प्रकाशककी ओरसे

इस पुस्तकमे गाधीजीके १५ अगस्त १९४७ से लेकर २९ जनवरी १९४८, यानी अंतिम समयतकके लेखोका संग्रह है। इन लेखोमें गांधीजीने आजादीके साथ-साथ देशमें पैदा होनेवाली स्थितिपर तथा अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण समस्याओपर अपने विचार प्रकट किए हैं। बापूकी अतिम रचना भी, जिसमें उन्होने काग्रेसके भावी रूपको सामने रखकर उसके विधानकी रूप-रेखा प्रस्तुत की थी, इस पुस्तकमें सम्मिलित कर दी गई है।

एक प्रकारसे यह पुस्तक १५ अगस्त १९४७ से लेकर बापूके निर्वाण-तकके समयका इतिहास है।

पुस्तककी सामग्री 'हरिजन' पत्रोसे इकट्ठी की गई है, जिसके लिए हम 'नवजीवन ट्रस्ट'के आभारी हैं।

—मंत्री

विषय-सूची

पंद्रह अगस्तके बाद

पंद्रह अगस्तके बाद

: १ :

पंद्रह अगस्तका उत्सव

मैने १५ अगस्तको लोगोसे उपवास करने, प्रार्थना करने और चरखा चलानेकी बात कही हैं। लोग कहते है, "यह क्या है? क्या यह रज मनानेकी निशानी नही है?" लेकिन ऐसा नही हैं। दुःखका कारण यह है कि देशके दो टुकड़े हो गए है, लेकिन ब्रिटिश हुकूमत हिंदुस्तान छोड रही है, इस-लिए खुशी मनानेका कारण भी हैं। आज उपवास रखकर और प्रार्थना करके अपने आपको पवित्र बनानेका हमारे पास वहुत वड़ा कारण है। ६ अप्रैल, १९१९के दिन पूरी-पूरी खुशी मनानेका कारण मौजूद था, जब कि सारे देशमे जागरणकी लहर फैल गई थी और हिंदू-मुसलमान और दूसरे लोग बिना किसी भेद-भाव या शक-शुबहेके आपसमे प्रेमसे मिलते थे। लेकिन उस दिन भी मैने लोगोंको प्रार्थना करके, उपवास रखकर और चरखा चलाकर उत्सव मनानेकी सलाह दी थी। आज तो हमारे लिए अपने-आपको भगवानके सामने झुकानेका वहुत ही ज्यादा वड़ा कारण मौजूद है, क्योकि आज भाई-भाई आपसमे लड़ रहे है, खाने और कपड़ेकी भयंकर तंगी है, और देशके नेताओपर इतनी बड़ी जिम्मेदारीका बोझ आ पड़ा है कि जिसके नीचे भगवानकी कृपाके बिना मजबूत-से-मजबूत आदमीकी कमर भी टूट सकती है।

कुछ लोग १५ अगस्तके दिन काले झडे दिखानेका विचार कर रहे है। मै इसका समर्थन नही कर सकता। उस दिन मातम मनानेका कोई कारण नही है।

मैने सुना है कि लोग खादी-भंडारोके पुराने झडे नही खरीदना चाहते और नई बनावटके झडोकी मांग करते है। नया झडा भी शुद्ध खादीका ही होगा। जबतक पुराने झडे बिक न जाय तबतक खादी-भडारोको नए झडे बेचनेसे इन्कार कर देना चाहिए। अगर लोग चरखेके पीछे रहनेवाली सच्ची भावनाको समझ ले तो वे खादी-भंडारोके—जो गरीबोकी जायदाद है—पास एक भी पुराना झंडा होगा तबतक उसे खरीदनेमे ही अपनी इज्जत और शान समझेगे।

नई दिल्ली, २८-७-'४७

: २ :

पंद्रह अगस्तके बाद कांग्रेस

सवाल—१५ अगस्तके बाद हिंदुस्तानके दो राज्योमें दो कांग्रेसें होंगी या एक ही रहेगी? या कांग्रेसकी जरूरत ही न रह जायगी?

जवाब—मेरे विचारसे ऐसी सस्थाकी आजतक जितनी जरूरत थी उससे कही ज्यादा अब बढ़ जायगी। बेशक उसका काम बदल जायगा। अगर काग्रेसजन नादानीसे दो धर्मोकी बुनियाद पर दो राष्ट्रोके सिद्धात स्वीकार नही कर लेते तब तो एक हिंदुस्तानके लिए एक ही कांग्रेस हो सकती है। हिंदुस्तानके

बंटवारेसे अखिल भारतीय संस्थाका बंटवारा नही होता—होना भी नही चाहिए। हिंदुस्तानके दो सार्वभौम राज्योंमे वट जानेसे उसके दो राष्ट्र नही हो जाते। मान लीजिए कि एक या ज्यादा रियासते दोनों राज्योसे बाहर रहती है, तो क्या कांग्रेस उन्हे और उनके लोगोको राष्ट्रीय कांग्रेससे बाहर कर देगी? क्या वे कांग्रेससे यह मांग नही करेगे कि वह उनकी तरफ विशेष ध्यान दे और उनकी विशेष परवा करे ? यह जरूर है कि अव पहलेसे ज्यादा पेचीदा सवाल खड़े होगे। उनमेसे कुछको हल करना मुश्किल भी हो सकता है, लेकिन कांग्रेसके दो टुकड़े करनेका यह कोई कारण नही होगा। इसके लिए कांग्रेसको अब तककी अपेक्षा ज्यादा बड़ी राजनीति, ज्यादा गहरे विचार और ज्यादा ठंडे दिमागसे फैसला करनेकी जरूरत होगी। हमे पहलेसे ही लाचार बना देनेवाली मुश्किलोंका विचार नही करना चाहिए। आजतक जो बुराइया हो चुकी वे काफी है।

सवाल—क्या कांग्रेस अब सांप्रदायिक संस्था बन जायगी? आज इसके लिए वार-वार मांग की जा रही है। अब जब कि मुसलमान अपने आपको परदेशी समझते है तब हम भी अपने यूनियनको हिंदू हिंदुस्तान कहकर क्यों न पुकारें और उसपर हिंदू-धर्मकी अमिट छाप क्यों न लगावें?

जवाब—यह सवाल पूछनेवालेके घोर अज्ञानको जाहिर करता है। कांग्रेस कभी हिंदू-संस्था नही वन सकती। जो उसे हिंदू-संस्था वनाएंगे वे हिंदुस्तान और हिंदू-धर्मके दुश्मन होगे। हिंदुस्तान करोडो लोगोंका राष्ट्र है। उनकी आवाज किसीने नही सुनी है। अगर कोई दो राष्ट्रके सिद्धांतको मानकर

कांग्रेसको हिंदू-संस्था बनानेपर जोर देते है तो वे शहरकी शोर-गुल मचानेवाली संस्थाए ही हैं। हम उनकी आवाजको हिंदुस्तानके लाखो गांवोंके करोड़ो लोगोकी आवाज समझनेकी गलती न करे। तीसरी बात यह है कि संघके मुसलमानोंने यह जाहिर नही किया है कि वे परदेशी है। आखीरमे, हिंदुओंकी बहुत-सी कमियोके बावजूद भी, बिना किसी विरोधके, यह दावा किया जा सकता है कि हिंदू-धर्मने दूसरोका कभी बहिष्कार नही किया। अलग-अलग धर्मोंको माननेवाले लोगोसे हिंदुस्तान एक और अखंड राष्ट्र बना है। उन सबका हिंदुस्तानके नागरिक होनेका एक-सा हक है। बहुमतवाली जातिको दूसरोको दबानेका कोई हक नही है। तादाद या तलवारकी ताकत सच्चा हक नही माना जायगा। न्यायसे मिला हुआ हक ही सच्ची ताकत होती है, हालांकि इसके खिलाफ भी बहुत-सी मिसाले मिलती है।

सवाल—गैर मुस्लिमोंका पाकिस्तानके झंडेकी तरफ क्या रुख होना चाहिए ?

जवाब—पाकिस्तानका झंडा अभी बना तो नही है। शायद वह मुस्लिम लीगका झंडा ही होगा। अगर पाकिस्तान और इस्लाम एक ही चीज है तो उसका झंडा वही होना चाहिए, जो दुनियाके सारे मुसलमानोंका झंडा है। और जो इस्लामके दुश्मन नही, उन सबको उसकी इज्जत करनी चाहिए। मैं इस्लाम, ईसाई-धर्म, हिंदू-धर्म या दूसरे किसी धर्मका ऐसा झंडा नही जानता। इतिहासका अच्छा जानकार न होनेके कारण मैं गलती कर सकता हूं। अगर पाकिस्तानका झंडा,

फिर वह किसी भी रंग और बनावटका हो, पाकिस्तानमें रहनेवाले किसी भी धर्मके लोगोकी एक-सी नुमाइंदगी करता है तो मैं उसे सलामी दूंगा और आपको भी देनी चाहिए। दूसरे शब्दोंमें, दोनो उपनिवेशोंको एक दूसरेके दुश्मन नहीं बनना चाहिए। राष्ट्र-सघ (कामनवेल्थ)के उपनिवेश या डोमिनियन एक दूसरेके दुश्मन नही हो सकते। मै दुःखभरी दिलचस्पीसे देख रहा हूं कि दक्षिण अफ्रीकाका उपनिवेश हिंदुस्तानके दो उपनिवेशोंके साथ कैसा बरताव करता है। क्या दक्षिणी अफ्रीकाके गोरे अब भी हिंदुस्तानियोसे नफरत कर सकते है ? क्या दक्षिणी अफ्रीकाके यूरोपियन हिंदुस्तानियोंके साथ, रेलके एक ही डिब्बेमे सफर करनेसे भी, सिर्फ इसलिए इन्कार कर सकेंगे कि वे हिंदुस्तानी है ?

नई दिल्ली, २९-७-४७

: ३ :

सच्चा इस्लाम

एक मुसलमान भाईने जो पत्र मेरे पास भेजा था, उसमेसे निजी जिक्रको छोड़कर बाकी मैं नीचे दे रहा हू :

"इस्लाम सारी दुनियाका धर्म है। उसका महान् संदेश है सत्यके लिए कोशिश करना और उसे पहचानना। मौलाना जलालुद्दीन रूमीकी नीचे दी गई कवितासे यह साफ मालूम होता है कि खलीफा अली जैसे महात्माओंको भी सत्यको पानेके लिए कितनी बड़ी कोशिश करनी पड़ती है :

१. पैगम्बर साहबने अलीसे कहा—'ऐ अली, तुम खुदाके शेर हो, सबसे बड़े बहादुर हो। फिर भी तुम अपनी शेर-जैसी बहादुरी और ताकतके भरोसे मत बैठो।

(लेकिन) तुम सत्यके पेड़के नीचे आसरा लो और जिसकी बुद्धि ज्ञानमय हो, उस आदमीकी शरणमें जाओ।

रूढ़िवादी धर्मको माननेवाले पुराणपंथी आदमीके रास्ते चलकर तुम सत्यको नहीं पा सकोगे।

धरतीपर उस पुरुषकी छाया काफके परबत जैसी है।

उसकी आत्मा ऊंचे आसमानमें उड़नेवाले गरुड़ जैसी है।

कयामतके दिनतक मैं उसका गुणगान किया करूं, तो भी वह अधूरा ही रहेगा।

याद रखो, वह सत्य मनुष्यकी शक्लमें छिपा हुआ है।

और, एक अल्ला ही उस सत्यको जाननेवाला है।

२. तुम नाम और रूपको छोड़कर गुणोंको पहचाननेकी कोशिश करो, जिससे ये गुण तुम्हें दुनियाके सारतक ले जायं।

इस दुनियाके संप्रदायों या फिरकोंके भेद उनके नामोसे पैदा हुए हैं; लेकिन जब ये सारे संप्रदाय दुनियाके सारतक पहुंचते हैं तभी उनके माननेवाले खुदाकी शांति पाते हैं।

आज मुस्लिम हिंदुस्तानके बारेमें सबसे बड़े दुःखकी बात यह है कि वह नामोंके जालमें फँस गया है। उसने इस्लामकी सच्ची सीखको भुला दिया है। इस सीखको मानकर ही वह सत्यको पहचान सकता था।

हिंदुस्तानके रहनेवाले इस्लामके अनुयायी अपनी-अपनी मरजीके मुताबिक काम करते हैं और फिर भी यह कहते हैं कि हम इस्लामके आदेशके माफिक काम करते हैं; लेकिन उन्हें इस बातका ध्यान नहीं रहता कि :

चांद अपनी चांदनी फैलाकर दुनियाको ठंडक देता है और कुत्ते उसके सामने भूंकते हैं :

हर प्राणी अपने स्वभावके मुताबिक काम करता है और हर प्राणी और हर चीजको खुदाके हुक्मसे उसके लायक काम मिला हुआ है ।

सनातन समयकी सौगंध खाकर मैं कहता हूं कि जो अच्छे कामोंमें विश्वास रखते हैं और उन्हें करते हैं और जो सत्य व अहिंसाका प्रचार करते हैं, उनके सिवा दूसरे सारे आदमी अपना सब कुछ खो देते हैं ।

इसलिए मैं आपसे विनती करता हूं कि जब आप मुसलमानोंके कामोंकी चर्चा करें तब मेहरबानी करके इस्लामका जिक्र न कीजिए, क्योंकि आज ये दोनो एक-दूसरेसे बहुत दूर हो गए हैं ।"

काश, यह इस्लाम पाकिस्तानके कामोमें दिखाई दे और इस खत लिखनेवाले भाईका उलाहना गलत साबित किया जा सके !

नई दिल्ली, २०-७-'४७

: ४ :

जिंदा दफनाया ?

एक हैदराबादी भाई लिखते हैं :—

"गांधीको जिंदा दफनाया जा रहा है ।

गाधीके माने गांधीके उसूल । इन्हीं उसूलोसे हम इस दरजेपर पहुंचे हैं; लेकिन जिस सीढ़ीसे हम ऊपर उठे, उसीको तोड़-ताड़कर फेंक दिया

जा रहा है। यह काम वे लोग कर रहे है जो गांधीके सबसे बड़े अनुयायी भी कहलाते है। हिंदू-मुस्लिम एकता, हिंदुस्तानी, खद्दर, ग्रामोद्योग—ये सब खतम कर दिए गए है। फिर भी जो इनकी बातें करते है, वे या तो धोखेमें है, या जान-बूझकर धोखा दे रहे है।"

मुझे जिंदा दफनानेका यह तरीका सबसे अच्छा है। 'दफनाया गया' ऐसे तो मै कैसे कबूल करू ? मेरे सबसे बडे अनुयायी कौन, और सबसे छोटे कौन ? मेरा तो एक ही अनुयायी है—वह मै या सब हिंदी। मेरे अनुयायी वे ही है, जो ऊपरकी बाते मानते हैं। मेरी उम्मीद तो अब भी रहती है कि करोड़ों देहाती ये चारों चीजे मानते हैं। फिर भी इस इल्जाम मे काफी सचाई है। लेकिन अब मै देख रहा हू कि मुस्लिमलीगी भाई यह कहने लगे है कि हम सब भाई-भाई है। अब तो यह भी तय हो गया है कि हम सब दोनों हिस्सोके शहरी हैं। पासपोर्टकी जरूरत आज तो नही मानी जायगी। कोई एक हुकूमत शुरू करे तभी ऐसा हो सकता है। हम आशा रखे और ऐसा बरताव करे जिससे पासपोर्टकी जरूरत ही न रहे। यह भी आशा रखे कि दोनोंमे-से कोई भी खद्दर नही छोडेगे, देहाती उद्योग-धन्धोंको नुकसान नहीं पहुंचाएंगे। हिंदुस्तानीके बारेमे लिख चुका हू। उसे कैसे छोड़ा जाय ? मुसलमान जिनकी मातृभाषा उर्दू है, उर्दू कैसे छोडे ? उन्हें अपनी उर्दू आसान करनी होगी और हिंदुओंको, जो उर्दू नही जानते, अपनी हिंदी आसान करनी होगी। तभी दोनों एक दूसरेको समझ सकेंगे। सबसे बड़ी बात तो लेखकने छोड ही दी है। हिंदुओंको अस्पृश्यता और जात-

पात छोडकर शुद्ध बनना होगा। मुसलमानोंको हिंदुओंकी नफरत छोडकर साफ होना होगा।

श्रीनगर, ३-८-'४७

: ५ :

तिरंगा झंडा

जिन हैदराबादी भाईने यह लिखा है कि 'गांधीको जिंदा दफनाया जा रहा है' वे ही आगे चलकर झंडेके बारेमें लिखते हैं :—

"तिरंगा झंडा हमारे आंदोलनका प्रतीक था। उससे चरखा हटाकर सबसे बड़ा अपराध किया गया है। नए चक्रका या पुराने अशोकके चक्रका गांधीके चरखेसे कोई संबंध नहीं है, बल्कि वे परस्पर विरोधी हैं। गांधीका चरखा धर्मसे, मजहबसे परे है, मगर नया चक्र हिंदू-धर्मका प्रतीक है। गांधीका चरखा 'अहिंसक परिश्रम' का प्रतीक है, मगर नया चक्र 'सुदर्शन चक्र' का प्रतीक है (ऐसा मुंशीजी अपने भाषणमें कहते हैं)। सुदर्शन चक्र हिंसाका प्रतीक है। इस प्रकार नए झंडेसे हिंदू-धर्मके नामपर राष्ट्रकी हिंसावृत्तिको उत्तेजन मिलेगा। उस दिशामें यह जान-बूझकर प्रयत्न किया जा रहा है। यह पाकिस्तानको मिलानेका नहीं, बल्कि पाकिस्तानको पक्का करनेका तरीका है।"

मुंशीजीने जो कहा उसे मैंने पढा नहीं है। अगर झंडेका वही अर्थ है, जो ऊपर बताया गया है तो राष्ट्रीय झंडा गया। अशोकका चक्र किसी भी हालतमें हिंसाका प्रतीक नहीं बन सकता। महाराज अशोक बौद्ध थे, अहिंसाके पुजारी थे।

सुदर्शन चक्रका तो झंडेके चक्रके साथ ताल्लुक नहीं हो सकता। सुदर्शन चक्र मेरी दृष्टिसे अहिंसाकी निशानी है। लेकिन यह मेरी ही बात हुई। साधारण रूपसे सुदर्शन चक्र हिंसाका साधन माना जाता है। इसमे शक नही कि नए झंडेसे और उसपर जो बहस हुई है, उससे यह कहा जा सकता है कि अगरचे चरखेका मूल्य गया नही है, फिर भी कम तो जरूर हुआ है। अशोक-चक्र और सूत कातनेका चरखा एक है या नही, यह तो आखिरकार लोगोंके आचारपर निर्भर रहेगा।

श्रीनगर, ३-८-'४७

: ६ :

चार सवाल

श्रीनगरमे मुझे लाला किशोरीलालके बगलेमे ठहराया गया था। वहां मै तीन दिन रहा। इस दरमियान मैंने लालाजीके कपाउडमे प्रार्थना तो की, मगर कोई भाषण नही दिया। दिल्ली छोडनेके पहले मैंने यह ऐलान कर दिया था कि काशमीरमे मैं कोई भाषण नही दूगा। मगर प्रार्थनामें शामिल होनेवाले भाइयोंमेसे कुछने मुझसे सवाल पूछे। उनमेसे एक सवाल यह था—

"पिछली शामको मैं आपकी प्रार्थना-सभामे हाजिर था जिसमे आपने दूसरी जातियोकी दो प्रार्थनाएं पढी थीं। क्या आप बतलानेकी

कृपा करेंगे कि ऐसा करनेमें आपका क्या ख्याल है ? और मजहब या धर्मसे आपका क्या मतलब है ?"

जैसा कि मै आजसे पहले भी बतला चुका हू--रैहाना तैयबजीकी सलाहसे कुछ बरस पहले कुरानकी आयते मेरी प्रार्थनामे शामिल की गई थी। उन दिनो रैहानाबहन सेवाग्राम-आश्रममे रहती थी। दूसरी प्रार्थना, डॉ० गिल्डरकी प्रेरणासे पारसी प्रार्थनाओमेसे ली गई है। आगाखां-महलमे नजरबंद-की हालतमे रहते हुए मैने जब अपना उपवास तोडा तब डाक्टर साहबने पारसी धर्मकी प्रार्थनाए पढ़ी थी। मेरी रायमे इनको शामिल कर लेनेसे प्रार्थनाका महत्त्व बढा है। अब वह पहलेसे ज्यादा लोगोके दिलोतक पहुचती है। इससे हिंदू-धर्मकी विशालता और सहिष्णुता जाहिर होती है। सवाल पूछने-वाले भाईको यह भी पूछना चाहिए था कि प्रार्थनाकी शुरुआत जापानी भाषामे गाई जानेवाली बौद्ध प्रार्थनासे क्यो होती है ? इस बौद्ध प्रार्थनाके पीछे, उसकी पाकीजगीके अनुकूल ही एक इतिहास है। जब एक भले जापानी साधु सेवाग्राम-आश्रममे ठहरे हुए थे तब रोज सवेरे इस बौद्ध प्रार्थनासे सारा सेवाग्राम गूजता था। ये जापानी सत अपने मौन और गौरवभरे स्वभावकी वजहसे सारे आश्रमवासियोके प्यारे बन गए थे।

जम्मू, ५-८-'४७

उन भाईका दूसरा सवाल यह था---

"लार्ड माउंटबेटनको पहला गवर्नर जनरल क्यो चुना गया ?"

जहांतक मेरा ख्याल है, सवाल पूछनेवाले भाईने इसके कारणका सही अदाज लगाया है। इस ओहदेके लिए इतना

योग्य कोई हिंदुस्तानी नही था। हिंदुस्तान आजादी-बिलकी कल्पना करनेमे लार्ड माउटबेटनका पूरा नही तो कुछ हिस्सा जरूर था, इसलिए राष्ट्रके जहाजको तूफानमेसे सुरक्षित निकाल ले जानेमें वे आरजी सरकारके मेम्बरोंको सबसे काबिल आदमी जान पड़े। इसमे अगर एक तरफ अंग्रेजोंकी तारीफकी बात है तो दूसरी तरफ हिंदुस्तानके राजनीतिज्ञोको भी इसके लिए उतना ही श्रेय दिया जाना चाहिए, जिन्होंने यह बतला दिया कि तरफदारीसे ऊपर उठनेकी उनमे योग्यता है। साथ ही उन्होने दिखला दिया कि अभीतक जो उनके विरोधी रहे है, उनपर भरोसा करनेकी बहादुरी उनमे है।

उनका तीसरा सवाल था—

"आप इस बातके लिए राजी क्यो नही होते कि अल्पसंख्यक लोग अपने-अपने उपनिवेशोंको छोड़ दे?"

इस बातपर राजी होनेके लिए मुझे किसीने नही कहा। मगर मुझे ऐसी किसी भी हलचलका विरोध करना चाहिए। किसी भी उपनिवेशके बहुसंख्यकोंपर अविश्वास करनेका कोई कारण नही है। और अब तो हर हालतमे, जब हिंदुस्तानमे दो सार्वभौम राज बन गए है, तब इनमेसे हर राजको अपने यहा रहनेवाले दूसरे राजके अल्पसख्यकोके प्रति उचित व्यवहार-की गारटी देनी होगी। मगर हम उम्मीद करे कि ऐसा मौका कभी नही आएगा। मैं भी मानता हूं कि हर एक हकके साथ एक फर्ज जुड़ा हुआ है। ऐसा कोई हक नही, जो ठीक तरहसे अदा किए हुए फर्जसे न निकलता हो।

उन भाईका चौथा सवाल है—

"क्या आप १५ अगस्तको हिंदुस्तानके आजाद हो जानेपर देशकी राजनीतिमें भाग लेना छोड़ देंगे ?"

पहली बात तो यह है कि हमे जो आजादी मिल रही है वह राम-राजके नजदीक ले जानेवाली नही है। राम-राज तो पहलेकी तरह आज भी हमसे करोडो मील दूर है। और फिर करोड़ोका जीवन ही हर हालतमे मेरी राजनीति है। उसे छोड़नेकी हिम्मत मुझमे नही है। उसे छोड़नेका मतलब होगा मेरे जीवनके काम और भगवानको माननेसे इन्कारकरना। यह बहुत सभव है कि १५ अगस्तके बाद मेरी राजनीति कोई दूसरा रास्ता ले ले। लेकिन इसका फैसला तो परिस्थितियां ही करेगी।

आखिरमे उन्होने पूछा है—

'आपने बिहारमें काफी काम किया है; लेकिन पंजाबको क्यो भुलाया ?'

इसके जवाबमे मैं इतना ही कह सकता हूं कि मेरे पंजाब न जानेका यह मतलब न लगाया जाय कि मैंने उस सूबेको भुला दिया है। फिर भी यह सवाल बिलकुल ठीक है और कई बार मुझसे पूछा भी गया है। मैंने पूरी ईमानदारीसे इसका यही जवाब दिया है कि न तो मुझे पंजाब जानेके लिए अपनी अतरात्मासे कोई प्रेरणा मिली और न मेरे सलाहकारोंने मुझे प्रोत्साहन दिया।

पटना जाते हुए, ट्रेनमे, ७-८-'४७

: ७ :

हलफनामेका मसविदा

श्री ब्रजलाल नेहरूने 'हरिजन'में छापनेके लिए जो हलफ-नामेका मसविदा भेजा है, वह नीचे दिया जाता है---

इस हलफनामेपर हिंदुस्तानकी फौजी या गैर-फौजी सरकारी नौक-रियोंके सारे मेम्बरोको, केन्द्रकी, सूबोंकी या स्थानीय नौकरियोके सारे उम्मीदवारोंको, इन सरकारोके मातहत दूसरी बड़ी-बड़ी तनखाहोवाली नौकरियोंके लिए अर्जी करनेवालोंको और धारासभाओके मेम्बरोंके साथ-साथ विधान-सभाके मेम्बरोको भी दस्तखत करने होगे।

मै ईमानदारीके साथ यह सौगंध लेता हूं कि---

१. मै हिंदुस्तानी संघका नागरिक हूं, जिसके प्रति हर हालतमें वफादार रहनेका मै वचन देता हूं।

२. मै इस उसूलको नहीं मानता कि हिंदू और मुसलमान दो अलग राष्ट्र है। मेरी यह राय है कि हिंदुस्तानके सब लोग---फिर वे किसी भी जाति या धर्मके हों---एक ही राष्ट्रके अंग है।

३. मै अपने सारे कामों और भाषणोमें ऐसी कोशिश करूंगा, जिससे इस पुराने और पवित्र देशके सब लोगोकी एक-राष्ट्रीयताके विचारको शक्ति मिले।

४. अगर किसी समय में इस प्रतिज्ञाको तोड़नेका अपराधी साबित होऊं तो मुझे उस समयकी अपनी किसी भी बड़ी तनखाहकी नौकरी या ओहदेसे हटा दिया जाय।"

इस हलफनामेके शब्दोमे सुधारकी गुजाइश हो सकती है; लेकिन अगर हम राजनैतिक मैदानमे बढनेवाले रोगसे

मुक्त होना चाहते हैं तो इस मसविदेके भीतर रही भावना सचमुच तारीफके लायक और अपनाने-जैसी है।

पटना जाते हुए, ट्रेनमें, ७-८-'४७

: ८ :

विद्यार्थियोंकी कठिनाइयां

सवाल—"आजकल विद्यार्थियोंके तमाम मौजूदा संघोंको एक राष्ट्रीय परिषद्का रूप देने, विद्यार्थियोंके आंदोलनकी बुनियादको फिरसे बदलने और विद्यार्थियोंके एक संयुक्त राष्ट्रीय संघको जन्म देनेकी कोशिश हो रही है। आपकी रायमें इस नए संघका क्या मकसद होना चाहिए? आज देशमें जो नई हालतें पैदा हो गई हैं उनमें इस विद्यार्थी संघको कौनसे काम करने चाहिए?"

जवाब—इसमें कोई शक नही कि हिंदू, मुसलमान और दूसरे विद्यार्थियोंका एक राष्ट्रीय संघ होना चाहिए । विद्यार्थी राष्ट्रके भविष्यको बनानेवाले होते हैं। उनका बंटवारा नही किया जा सकता। मुझे यह कहते दुःख होता है कि न तो विद्यार्थियोंने खुद अपने लिए कभी यह सोचा और न नेताओंने उन्हें सिर्फ अभ्यासमे ही मन लगानेका मौका दिया, ताकि वे अच्छे नागरिक बन सकें। यह सड़ाँद विदेशी हुकूमतके साथ हमारे देशमें शुरू हुई। उस हुकूमतके वारिस बननेवाले हम लोगोने भी बीते जमानेकी गलतियोंको सुधारनेकी तकलीफ नही की। इसके अलावा, अलग-अलग सियासी पार्टियोंने

विद्यार्थियोंको अपने जालमे फँसानेकी कोशिश की, मानों वे मछलियोके झुंड हों। और विद्यार्थी नादानीसे इस फैलाए हुए जालमे फँस गए।

इसलिए किसी भी विद्यार्थी-संघके लिए यह काम हाथमें लेना वड़ा कठिन है। लेकिन उनमें ऐसे वहादुर लोग जरूर होगे जो इस जिम्मेदारीसे पीछे नही हटेंगे। उनका ध्येय होगा, सव विद्यार्थियोको एक संस्थाके मातहत संगठित करना। यह काम वे तवतक नही कर सकेंगे, जवतक वे सक्रिय राज-नीतिसे विलकुल अलग रहना नही सीखेंगे। विद्यार्थीको चाहिए कि वह ऐसे कई सवालोंका अध्ययन करे जिनका हल किया जाना जरूरी हो। उसके काम करनेका वक्त पढाई खतम करनेके वाद ही आता है।

सवाल—"आज विद्यार्थियोंके संघ राष्ट्र-निर्माणके काममें अपनी शक्ति लगानेके वनिस्वत राजनैतिक मामलोंपर प्रस्ताव पास करनेकी तरफ ज्यादा ध्यान देते हैं। इसका एक कारण यह है कि देशकी राजनैतिक पार्टियां अपना मतलब निकालनेके लिए विद्यार्थियोंकी संस्थाओंको हथियानेकी कोशिश करती रही हैं। हमारी आजकी फूट भी इस राजनैतिक दलबंदीके कारण ही है। इसलिए हम कोई ऐसा तरीका काममें लाना चाहते हैं जिससे विद्यार्थियोंके नए राष्ट्रीय संघमें दलबंदी और फूटके विचार फिर न फैल सकें। क्या आप यह सोचते हैं कि विद्यार्थियोंके संघ राजनीतिसे बिल्कुल अलग रह सकते हैं? अगर नहीं तो आपकी रायमें विद्यार्थीसंघोंको देशकी राजनीतिमें किस हदतक दिलचस्पी लेनी चाहिए?"

जवाब—कुछ हदतक इस सवालका जवाब ऊपर दिया जा

चुका है। विद्यार्थियोंको सक्रिय राजनीतिसे बिलकुल अलग रहना चाहिए। यह देशके एकतरफा विकासकी निशानी है कि तमाम पार्टियोने अपना मतलब पूरा करनेके लिए ही विद्यार्थियोका उपयोग किया है। शायद ऐसी हालतमे यह लाजिमी भी था, जब कि शिक्षाका एकमात्र ध्येय गुलामीसे चिपटे रहनेवाले गुलामोंकी एक जाति पैदा करना था। मुझे उम्मीद है कि यह काम अब खतम हो गया। आज विद्यार्थियोंका पहला काम उस शिक्षापर पूरी तरह विचार करना है जो आजाद राष्ट्रके बच्चोंको दी जानी चाहिए। आजकी शिक्षा तो हरगिज ऐसी नही है। मेरे लिए यहा इस सवालपर विचार करना जरूरी नही कि वह कैसी होनी चाहिए। मैं तो सिर्फ यही कहना चाहता हूं कि विद्यार्थी अपने-आपको इस धोखेमे न रखे कि तालीमके सवाल पर हर पहलूसे सोचना और उसकी योजना बनाना सिर्फ यूनिवर्सिटी सीनेटके मेम्बरोका ही काम है। उन्हे अपने अदर सोचने-विचारनेकी शक्ति बढ़ानी चाहिए। यहा मै इस बातकी सलाह तो दे ही नही सकता कि विद्यार्थी हड़तालो या दूसरी इसी तरहकी हलचलोके दबावसे यह हालत पैदा कर सकते है। उन्हे तालीमके मौजूदा ढगकी रचनात्मक और जाग्रत टीका करके जन-मत तैयार करना चाहिए। सीनेटके मेम्बर पुराने ढगसे पले-पुसे है और शिक्षित हुए है। इसलिए वे इस दिशामें जल्दी-जल्दी आगे नही बढ़ सकते। लेकिन यह सच है कि जागृति पैदा करके उनसे यह काम कराया जा सकता है।

सवाल—"आज ज्यादातर विद्यार्थी राष्ट्रीय सेवामें दिलचस्पी नहीं

लेते। उनमेंसे बहुतसे तो पश्चिमकी फैशनेबल आदतोंके गुलाम बन रहे हैं और अधिकाधिक संख्यामें शराब पीने वगैरहकी बुरी आदतोंके शिकार हो रहे हैं। आजादीसे किसी विषयपर सोचनेकी न तो उनमें काबलियत है, न इच्छा। हम इन सारी समस्याओंको हल करना चाहते हैं और नौजवानोंमें उच्च चरित्र, निजाम और काबलियत पैदा करना चाहते हैं।"

जवाब---इसमें विद्यार्थियोकी मौजूदा अस्थिर मनोवृत्तिका वर्णन है। जब शात वातावरण पैदा होगा और विद्यार्थी आदोलन करना छोडकर गभीरतासे अपनी पढाईमे जुट जायगे तब उनकी यह हालत नही रहेगी। विद्यार्थीकी जिदगीकी जो संन्यासीकी जिदगीसे तुलना की गई है वह ठीक है। उसे सादा रहन-सहन और ऊंचे विचारकी जीती-जागती मूर्ति होना चाहिए। उसे निजाम या अनुशासनका अवतार होना चाहिए। विद्यार्थीका आनद उसकी पढाईमे है। जब विद्यार्थी अपनी पढाईको लाजमी टैक्सके रूपमे देखना छोड देता है तब वह जरूर उसको सच्चा आनद देती है। विद्यार्थीके लगातार अधिकाधिक ज्ञान हासिल करते जानेसे बढकर उसके लिए दूसरा आनद और क्या हो सकता है?

पटना जाते हुए, ट्रेनमें, ७-८-'४७

: ६ :

घुड़दौड़की लत

नीचे दिया हुआ अश 'हरिजनबधु' मे छपे एक गुजराती पत्रका सार है---

"बरसातके मौसममें पूनामें घुड़दौड़ होती है। तीन स्पेशल गाड़ियां हर रोज पूना जाती है और वापिस आती है। और यह तब होता है जब गाड़ियोमें जगह नहीं मिलती और कामकाजी लोगोको मुसाफिरोसे ठसाठस भरी हुई गाड़ियोमें सफर करना पड़ता है। मुसाफिर अक्सर पायदानोपर लटके जाते है। नतीजा यह होता है कि कभी-कभी प्राण-घातक दुर्घटनाएं हो जाती है। एक बात और भी है, और वह यह कि जब पेट्रोलकी सब जगह कमी है तब अतिरिक्त मोटरगाड़ियां भी बम्बईसे पूना दौड़ती है। क्या ये मुसाफिर बम्बईमें अपना हमेशाका राशन नहीं लेते? क्या इनको स्पेशल गाड़ियोंमें और घुड़दौड़के मैदानमें नाश्ता नहीं मिलता?

इसपरसे मेरे मनमें सिविल सर्विसकी जांच करनेकी बात पैदा होती है। जिन लोगोंके बुरे इंतजामकी हम पहले निंदा किया करते थे, क्या वे ही लोग आज देशका राजकाज नहीं चला रहे है? हमारी आज क्या हालत हो रही है? हमें जरूरतका अनाज और कपड़ा भी मयस्सर नहीं होता। और हम अपनेको खर्चीले खेल-तमाशोंमें फँसा हुआ पाते है!"

मैं अक्सर घुडदौडकी बुराइयोके बारेमे लिख चुका हूं। मगर उस वक्त मेरी बातपर कोई ध्यान नही देता था। विदेशी शासक इस बुरी आदतको पसंद करते थे और उन्होने इसे एक किस्मकी अच्छाईका जामा पहना दिया था। मगर अब उस गदी आदतसे चिपके रहनेकी कोई वजह नही है। या कही यह तो न हो कि हम विदेशी हुकूमतकी बुराइयोंको तो बनाए रखे और उसकी अच्छाइया उसके साथ ही खत्म हो जाएं?

पत्र लिखनेवाले भाई सिविल सर्विसके बारेमे जो कहते है, उसमे बहुत कुछ सचाई है। वह एक ऐसी सस्था है जिसके आत्मा नही है। वह अपने मालिकके रग-ढगपर चलती है।

इसलिए अगर हमारे नुमाइंदे सचेत रहे और हम उनपर अपना कर्त्तव्य-पालन करनेके लिए जोर दे तो सिविल सर्विसके जरिए बहुत कुछ काम किया जा सकता है। आलोचना किसी भी जनतंत्रीय सरकारका भोजन है। मगर वह रचनात्मक और समझदारीभरी होनी चाहिए। जन-आदोलनकी शुरुआतमे काग्रेस अपनी जिस बुनियादी पवित्रताके लिए मशहूर थी, उसपर ही जनताकी आशा टिकी हुई है। और अगर हमे जिदा रहना है तो कांग्रेसमे वह पवित्रता फिरसे लौटानी होगी।

पटना जाते हुए, ट्रेनमे, ७-८-'४७

: १० :

चमत्कार या संयोग ?

शहीदसाहब सुहरावर्दी और मै बेलियाघाटाके एक मुस्लिम मजिलमे साथ-साथ रहते है। कहा जाता है कि यहा दगेमे मुसलमानोको नुकसान पहुचा है। हम १३ अगस्त, बुधवारको इस घरमे आए और १४ अगस्तको ऐसा मालूम हुआ मानो यहाके हिदुओ और मुसलमानोमे कभी कोई अदावत या दुश्मनी थी ही नही। हजारोकी तादादमे वे एक-दूसरेसे गले मिलने लगे और निडर बनकर उन जगहोसे गुजरने लगे जिन्हे एक या दूसरी पार्टी खतरनाक समझती थी। सचमुच मुसलमान भाई अपने हिदू भाइयोको मसजिदोमे ले गए और

हिंदू अपने मुसलमान भाइयोंको मंदिरोमें। दोनोने एक साथ 'जय हिंद' और 'हिंदू-मुस्लिम एक हो' के नारे लगाए। जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, हम एक मुसलमानके घरमे रहते हैं और मुसलमान सेवक और सेविकाएं हमारे सुख-सुभीतोंका ज्यादा-से-ज्यादा ध्यान रखती है। मुसलमान स्वयसेवक हमारा खाना वनाते है। खादी प्रतिष्ठानसे बहुतसे लोग मेरी सेवाके लिए आना चाहते थे, लेकिन मैंने उन्हे रोक दिया। मैंने यह पक्का इरादा कर लिया था कि मुसलमान भाई और बहनें जो कुछ भी सुख-सुभीते हमे दे सकेंगे, उन्हीसे हमे पूरा सतोष मानना चाहिए। और, मुझे यह कहना चाहिए कि अपने इस इरादेसे मुझे जरा भी नुकसान नही हुआ। मकानके अहातेमे 'जय हिद' और 'हिंदू-मुस्लिम एक हों' के नारे लगानेवाले अनगिनत हिंदू-मुसलमानोका तांता बंधा रहता है। मै तो यहातक सुनता हूं कि भाईचारेका उत्साह लगातार बढता जा रहा है।

इसे चमत्कार कहा जाय या सयोग ? इसको किसी भी नामसे क्यो न पुकारा जाय यह तो साफ है कि चारों तरफसे इसका जो श्रेय मुझे दिया जाता है उसके लायक मै नही हूं। तव क्या शहीदसाहबको इसका श्रेय है ? उन्हे भी इसका श्रेय नही मिलना चाहिए। एकाएक होनेवाला यह भारी फेरफार एक या दो आदमियोंका काम नही है। हम तो भगवानके हाथके खिलौने है। वह हमे अपने इशारेपर नचाता है। इसलिए आदमी ज्यादा-से-ज्यादा यही कर सकता है कि वह इस नाचमे कोई रुकावट न डाले और अपने भगवानकी

इच्छाको अच्छी तरह पूरी करे। इस तरह विचार करनेपर यह कहा जा सकता है कि इस चमत्कारमें भगवानने हम दोनोंको अपना साधन बनाया है। मैं अपने आपसे यही पूछता हूं कि क्या मेरा बचपनका सपना बुढ़ापेमें पूरा होगा? देखूं क्या होता है।

जो भगवानमें पूरी श्रद्धा रखते हैं उनके लिए न तो यह चमत्कार है और न संयोग। घटनाओंका सिलसिला यह साफ बताता है कि दोनों जातियां, अनजानमें ही, इस भाई-चारेके लिए तैयार की जा रही थीं। इस जगह हम दोनोंके पहुंच जानेसे देखनेवालोंको आनंदसे भरी इस घटनाके लिए हमें श्रेय देनेका मौका मिल गया।

कुछ भी हो, खुशीसे पागल बना देनेवाली ये घटनाएं मुझे खिलाफत आंदोलनके शुरुआतके दिनोंकी याद दिलाती हैं। तब जनतामें भाईचारेकी भावना नए अनुभवके रूपमें फूट पड़ी थी। इसके अलावा, तब हमारे खिलाफत और स्वराजके आदर्श एक-दूसरेसे जुड़े हुए थे। आज उस तरहकी कोई बात नहीं है। हमने आपसी नफरतका जहर पी लिया है। इसलिए भाईचारेका यह अमृत हमें बहुत ज्यादा मीठा लगना चाहिए और उसकी मिठास कभी कम न होनी चाहिए।

आजके नारोंमें हिंदुओं और मुसलमानोंके मुंहसे एक साथ 'हिंदुस्तान-पाकिस्तान जिंदाबाद' का स्वर भी सुनाई देता है। मेरे विचारसे यह बिलकुल ठीक है। पाकिस्तानको मंजूर करनेका कोई भी कारण क्यों न रहा हो, तीन पार्टियोंने उसे मान लिया है। तब अगर दो पार्टियां एक दूसरेकी

दुश्मन न हों—और यहा तो वे साफ तौरपर एक-दूसरीकी दुश्मन नही मालूम होती—तो ऊपरका नारा लगानेमें कोई बुराई नही है। अगर दोनों जातियां सचमुच दोस्त बन जाएं तो दोनो राज्योकी लंबी जिंदगीकी कामना न करना बेवफाई होगी।

बेलियाघाटा, १६-८-'४७

: ११ :

हिंदुस्तानी गवर्नर

यहां 'इंडिया' शब्दके मानोंमे हिंदुस्तान और पाकिस्तान दोनों शामिल हैं। शब्दोंका ठीक-ठीक अर्थ किया जाय तो हिंदुस्तानसे हिंदुओंका देश और पाकिस्तानसे मुसलमानोंका देश समझा जा सकता है। मेरी रायमें दोनों शब्दोंका ऐसा इस्तेमाल कायदेके खिलाफ है। इसलिए मैंने यहां जान-बूझकर 'हिंदुस्तान' शब्दका इस्तेमाल किया है।

ब्रिटिश जुएसे आजादी दिलानेवाली कांग्रेसका जो खास जलसा १९२०मे कलकत्तेमे हुआ था, उसमे खिलाफत-स्वराज-असहयोगका प्रस्ताव पास हुआ था। वह हिंदू और मुसलमान दोनोंके लिए था। उसका मकसद लोगोंमें आत्म-शुद्धिकी भावना पैदा करना था, जिससे अच्छी और बुरी ताकतोंके बीच असहयोग किया जा सके। इसलिए,

१. हिंदुस्तानी गवर्नरको चाहिए कि वह खुद पूरे संयमका

पालन करे और अपने आसपास सयमका वातावरण खडा करे। इसके बिना शराब-वदीके बारेमे सोचा भी नही जा सकता।

२. उसे अपनेमे और अपने आसपास हाथ-कताई और हाथबुनाईका वातावरण पैदा करना चाहिए, जो हिंदुस्तानके करोड़ो गूगोके साथ उसकी एकताकी जाहिरा निशानी हो, 'मेहनत करके रोटी कमाने' की जरूरतका, और संगठित हिसाके खिलाफ—जिसपर आजका समाज टिका हुआ मालूम होता है—संगठित अहिसाका जीता-जागता प्रतीक हो।

३ अगर गवर्नरको अच्छी तरह काम करना है तो उसे लोगोकी निगाहोसे बचे हुए, फिर भी सबकी पहुचके लायक, छोटेसे मकानमे रहना चाहिए। ब्रिटिश गवर्नर स्वभावसे ब्रिटिश ताकतको दिखाता था। उसके और उसके लोगोंके लिए सुरक्षित महल बनाया गया था—ऐसा महल जिसमे वह और उसके साम्राज्यको टिकाए रखनेवाले उसके सेवक रह सके। हिंदुस्तानी गवर्नर राजा-नवाबो और दुनियाके राज-दूतोंका स्वागत करनेके लिए थोडी शान-शौकतवाली इमारते रख सकते है। गवर्नरके मेहमान बननेवाले लोगोको उसके व्यक्तित्व और आसपासके वातावरणसे 'ईवन अण्टु दिस लास्ट' (सर्वोदय)—सबके साथ समान बरताव—की सच्ची शिक्षा मिलनी चाहिए। उसके लिए देशी या विदेशी महंगे फर्निचरकी जरूरत नही। 'सादा जीवन और ऊचे विचार' उसका आदर्श होना चाहिए। यह सिर्फ उसके दरवाजेकी ही शोभा न बढाए, बल्कि उसके रोजके जीवनमे भी दिखाई दे।

४. उसके लिए न तो किसी रूपमे छुआछूत हो सकती है

और न जाति, धर्म या रंगका भेद। हिंदुस्तानका नागरिक होनेके नाते उसे सारी दुनियाका नागरिक होना चाहिए। हम पढते है कि खलीफा उमर इसी तरह सादगीसे रहते थे, हालाकि उनके चरणोपर लाखों-करोडोंकी दौलत लोटती रहती थी। इसी तरह पुराने जमानेमे राजा जनक रहते थे। इसी सादगीसे ईटनके स्वामी, जैसा कि मैंने उन्हे देखा था, अपने भवनमे ब्रिटिश द्वीपोके लार्ड और नवाबोंके लड़कोंके बीच रहा करते थे। तब क्या करोड़ो भूखोके देश हिंदुस्तानके गवर्नर इतनी सादगीसे नही रहेगे ?

५. वह जिस प्रातका गवर्नर होगा, उसकी भाषा और हिंदुस्तानी बोलेगा, जो हिंदुस्तानकी राष्ट्रभाषा है और नागरी या उर्दू लिपिमे लिखी जाती है। वह न तो संस्कृत शब्दोंसे भरी हुई हिंदी है और न फारसी शब्दोसे लदी हुई उर्दू। हिंदुस्तानी दरअसल वह भाषा है, जिसे विध्याचलके उत्तरमें करोडो लोग बोलते है।

हिंदुस्तानी गवर्नरमे जो-जो गुण होने चाहिए उनकी यह पूरी सूची नही है। यह तो सिर्फ मिसालके तौरपर दी गई है।

हम आशा करे कि वे अग्रेज भी, जिन्हे हिंदुस्तानी नुमाइदोने गवर्नर चुना है और जिन्होने हिंदुस्तान और उसके करोड़ोकी वफादारीकी सौगध ली है, वही सादा जीवन बितानेकी भरसक कोशिश करेगे, जिसकी हिंदुस्तानी गवर्नरसे आशा की जाती है। वे ब्रिटेनके उन अच्छे-से-अच्छे गुणोंका प्रदर्शन करेगे, जो वह हिंदुस्तान और दुनियाको दे सकता है।

कलकत्ता, १७-८-'४७

: १२ :

भगवान भला है

भगवान उसी अर्थमे भला नही है, जिसमें इन्सान भला है। इन्सान तुलनामें भला है। वह बुरेके बनिस्वत भला ज्यादा है। लेकिन भगवान तो भला-ही-भला है। उसमें बुराईका नाम भी नही है। भगवानने इन्सानको अपनी ही तरह बनाया। लेकिन हमारे दुर्भाग्यसे इन्सानने भगवानको अपने-जैसा बना डाला है। इस घमंडसे मनुष्य-जाति दुःखों और कठिनाइयोंके समुद्रमे जा पड़ी है। भगवान सबसे बड़ा रसायन-शास्त्री है। वह जहां मौजूद रहता है, वहां लोहा और कचरा भी खरा सोना बन जाता है। उसी तरह सारी बुराई भलाईमे बदल जाती है।

फिर, भगवान है, लेकिन हमारी तरह नही। उसके प्राणी मरनेके लिए ही जीते है। लेकिन भगवान तो खुद जीवन है। इसलिए भलाई, अपने हर मानीमे, भगवानका गुण नहीं है। भलाई भगवान ही है। भगवानसे अलग जिस भलाईकी कल्पना की जाती है, वह बेजान चीज है और वह तभी-तक टिकती है जबतक उससे हमे फायदा पहुंचता है। यही बात सारे सदाचारोंके बारेमे भी सच है। अगर उन्हे हमारे जीवनमें जिंदा रहना है तो हमे यह सोचकर अपनेमे उन्हें बढ़ाना होगा कि भगवानसे उनका संबंध है। वे भगवानके दिए हुए है। हम भले बनना चाहते है, क्योंकि हम भगवानको पाना और उसमे मिल जाना चाहते है।

दुनियाके सारे निर्जीव नैतिक सिद्धांत बेकार हैं, क्योंकि भगवानसे अलग उनकी कोई हस्ती नही है—वे बेजान है। भगवानके प्रसादके रूपमे वे जानदार बनकर आते हैं। वे हमारे जीवनके अग बन जाते हैं और हमे ऊंचा उठाते हैं। इसके खिलाफ, भलाईके बिना भगवान भी बेजान हैं। हम अपनी झूठी कल्पनाओंमें ही उसे जिंदा बनाते हैं—उसमें प्राण फूंकनेकी कोशिश करते हैं।

कलकत्ता, १७-८-'४७

: १३ :

गायको कैसे बचाया जाय ?

हिंदू-धर्ममें और हिंदुस्तानी जीवनकी आर्थिक व्यवस्थामें गायकी क्या जगह है, इसके बारेमे लोग बहुत ही कम जानते हैं। हिंदुस्तान विदेशी हुकूमतसे आजाद तो हो गया, लेकिन साथ ही देशकी सारी पार्टियोंकी एक रायसे उसके दो टुकड़े भी हो गए है। इससे आम लोगोमें ऐसा विश्वास पैदा हो गया है कि वे एक हिस्सेको हिंदू हिंदुस्तान और दूसरेको मुस्लिम हिंदुस्तान कहने लगे है। इस विश्वासका समर्थन नही किया जा सकता। फिर भी दूसरे सारे झूठे विश्वासोंकी तरह हिंदू हिंदुस्तान और मुस्लिम हिंदुस्तानका यह विश्वास भी बड़ी कठिनाईसे दूर होगा। सच बात तो यह है कि जो कोई अपने आपको इस देशकी सतान कहते हैं और है, वे सब हिंदुस्तानी

संघ और पाकिस्तानके एक-से नागरिक है, भले ही वे किसी भी धर्म या रंगके हों।

फिर भी, प्रभावशाली हिंदू बहुत बड़ी तादादमे यह झूठा विश्वास करने लगे है कि हिंदुस्तानी सब हिंदुओंका है और इसलिए उन्हे कानूनके जरिये अपने इस विश्वासको गैर-हिंदुओंसे भी जबरन मनवाना चाहिए। इसलिए यूनियनमें गायोंकी हत्याको रोकनेका कानून बनवानेके लिए सारे देशमें जोशकी एक लहर-सी फैल रही है।

ऐसी हालतमे—जिसकी नीव मेरी रायमें अज्ञान है—हिंदुस्तानमें दूसरो-जैसा ही गायका भक्त और समझदार प्रेमी होनेका दावा करते हुए मुझे अच्छे-से-अच्छे ढगसे लोगोके इस अज्ञानको दूर करनेकी कोशिश करनी चाहिए।

सबसे पहले हम यह समझ ले कि धार्मिक मानोंमे गायकी पूजा बडे पैमानेपर सिर्फ गुजरात, मारवाड, युक्तप्रांत और बिहारमे ही होती है। गुजराती और मारवाड़ी लोग साहसी व्यापारी होते हैं। इसलिए वे इस बारेमे बडी-से-बडी आवाज उठानेमे कामयाब हुए है। लेकिन गो-हत्याके खिलाफ आवाज उठानेके साथ-ही-साथ वे अपनी व्यापारी बुद्धिको हिंदुस्तानके पशु-धनकी रक्षाके बड़े मुश्किल सवालको हल करनेमे नही लगा रहे हैं।

अपने धर्मके आचार-विचारको कानूनके जरिये दूसरे धर्मके लोगोंपर लादना बिलकुल गलत चीज है।

अगर गो-रक्षाके सवालको सिर्फ आर्थिक आवश्यकताकी निगाहसे ही देखा जाय तो वह बड़ी आसानीसे हल किया जा

सकता है, लेकिन शर्त यही है कि उसपर सिर्फ आर्थिक आधारसे ही विचार किया जाय। उस हालतमे दूध न देनेवाले सारे मवेशी, अपने पालनेके खर्चसे भी कम दूध देनेवाली गायें, और बूढे व बेकार जानवर बिना किसी हिचकिचाहटके मार डाले जाने चाहिए। इस बेरहम आर्थिक व्यवस्थाकी हिंदुस्तानमे कोई जगह नही है, हालांकि आपसी विरोधवाले मतोके इस देशके लोग कई कठोर काम करनेके अपराधी हो सकते हैं और सचमुच है।

अब सवाल यह है कि जब गाय अपने पालन-पोषणके खर्चसे भी कम दूध देने लगती है या दूसरी तरहसे नुकसान पहुंचानेवाला बोझ बन जाती है तब बिना मारे उसे कैसे बचाया जा सकता है? इस सवालका जवाब थोडेमें इस तरह दिया जा सकता है।

१. हिंदू गाय और उसकी संतानकी तरफ अपना फर्ज पूरा करके उसे बचा सकते है। अगर वे ऐसा करें, तो हमारे जानवर हिंदुस्तान और दुनियाके गौरव बन सकते हैं। आज इससे बिलकुल उलटा हो रहा है।

२. जानवरोंके पालन-पोषणका विज्ञान सीखकर गायकी रक्षा की जा सकती है। आज तो इस काममें पूरी अंधाधुंधी चलती है।

३. हिंदुस्तानमे आज जिस बेरहमी तरीकेसे बैलोको बधिया बनाया जाता है, उसकी जगह पश्चिमके हमदर्दी-भरे और नरम तरीके काममे लाकर इसे बचाया जा सकता है।

४. हिंदुस्तानके सारे पिंजरापोलोंका पूरा-पूरा सुधार किया जाना चाहिए। आज तो हर जगह पिंजरापोलका इंतजाम ऐसे लोग करते है जिनके पास न कोई योजना होती है और न वे अपने कामकी जानकारी ही रखते है।

५. जब ये महत्त्वके काम कर लिए जायंगे तो मुसलमान खुद, दूसरे किसी कारणसे नही तो अपने हिंदू भाइयोंके खातिर ही, मांस या दूसरे मतलबके लिए गायको न मारनेकी जरूरत समझ लेंगे।

पढ़नेवाले यह देखेंगे कि ऊपर बताई हुई जरूरतोंके पीछे एक खास चीज है। वह है अहिंसा, जिसे दूसरे शब्दोंमें प्राणी-मात्रपर दया कहा जाता है। अगर इस सबसे बड़े महत्त्वकी बातको समझ लिया जाय तो दूसरी सब बातें आसान बन जाती है। जहां अहिंसा है, वहां अपार धीरज, भीतरी शांति, भले-बुरेका ज्ञान, आत्म-त्याग और सच्ची जानकारी भी है। गो-रक्षा कोई आसान काम नही है। उसके नामपर देशमें बहुत पैसा बरबाद किया जाता है। फिर भी अहिंसाके न होनेसे हिंदू गायके रक्षक बननेके बजाय उसके नाश करनेवाले बन गए है। गो-रक्षाका काम हिंदुस्तानसे विदेशी हुकूमतको हटानेके कामसे भी ज्यादा कठिन है।

कलकत्ता, २२–८–'४७

[नोट: कहा जाता है कि औसतन हिंदुस्तानकी गाय रोजाना २ पौंडके करीब दूध देती है, जब कि न्यूजीलैंडकी १४ पौंड, इंग्लैंडकी १५ पौंड और हालैंडकी २० पौंड दूध

देती है । जैसे-जैसे दूधकी पैदावार बढती है, वैसे-वैसे तदुरुस्तीके आंकड़े भी बढते है ।]

२३-८-'४७

: १४ :

क्या 'हरिजन'की जरूरत है ?

मुझे लगता है कि अब चूंकि अंग्रेजी हुकूमतसे हिंदुस्तानको आजादी मिल गई है, इसलिए 'हरिजन' अखबारोंकी अब और ज्यादा जरूरत नही है । मेरे विचार जैसे है वैसे ही सदा रहेगे । आजाद हिंदुस्तानकी पुनर्रचनाकी योजनामे इस बातका ध्यान रखनेकी जरूरत है कि उसके देहात आजकी तरह उसके शहरोंपर निर्भर न रहे, बल्कि इससे उलटे, शहरोका बना रहना सिर्फ देहातोके लिए और देहातोंको फायदा पहुंचानेके लिए ही हो । इसलिए केंद्रकी गौरवभरी जगहपर चरखेको रखकर उसके आसपास देहातोको जीवन देनेवाले गृह-उद्योगो-को सजाया जाय । मगर जान पड़ता है कि इस चीजको सबसे पीछे ढकेला जा रहा है । यही बात दूसरी कई चीजोके बारेमे कही जा सकती है, जिनके मै मोहक चित्र खीचा करता था । मै और ज्यादा दिनोंतक ऐसा करनेका साहस नही कर सकता । पहलेसे ज्यादा बड़े तूफानमे आज मेरी नाव चल रही है । यह भी कहा जा सकता है कि मेरे ठहरनेकी कोई एक निश्चित जगह नही है । 'हरिजन'के पृष्ठ ज्यादातर

मेरे प्रार्थना-सभाके बादके भाषणोसे ही भरे रहते है। मेरे खुदके लिखे हुए मजमूनका औसत तो उसमे हर हफ्ते सिर्फ डेढ़ कॉलम ही होता है। यह जरा भी सतोषकी बात नही है। इसलिए मै चाहता हू कि 'हरिजन' साप्ताहिकोके पाठक मुझे अपनी साफ राय दे कि वे अपनी राजनैतिक और आध्यात्मिक भूख बुझानेके लिए सचमुच अपने 'हरिजन' साप्ताहिककी जरूरत महसूस करते है या नही। पाठक जिस किसी भाषाके 'हरिजन' साप्ताहिकके ग्राहक हों, उसी भाषामे सपादक, 'हरिजन' अहमदाबादके नामपर अपने जवाब भेजे और अगर वे चाहते है कि 'हरिजन' निकलता रहे तो वे सक्षेपमे मुझे यह बतला दे कि वे ऐसा क्यो चाहते है। जिस लिफाफेमे वे अपना जवाब भरकर भेजे, उसकी बाई ओरके ऊपरके कोनेमें यह जरूर लिखे—'हरिजनके बारेमे।'

कलकत्ता, २४–८–'४७

: १५ :

विद्यार्थियोंके बारेमें

एक भाई लिखते है :

"विद्यार्थियों और उनके संघोंके बारेमें आपने 'हरिजन' में इस समय बड़े मौकेकी चर्चा शुरू की है। स्वर्गीय एच० जी० वेल्सने एक जगह विद्यार्थियोंके लिए 'अंडरग्रेज्युएट इंटेलिजेंस' शब्दका इस्तेमाल किया है। कच्ची समझवाले विद्यार्थियोंका बेजा फायदा उठानेका काम

इस नए जमानेमें भयंकर नुकसान करता है । वह विद्यार्थियोंको पढ़ाईसे दूर हटाता है और आजकी विषम परिस्थितिमें अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारता है ।

"आपके जिस लेखका मैंने ऊपर जिक्र किया है, उसके बारेमें सवाल पूछा जा सकता है: "क्या गांधीजीने ही पहले-पहल विद्यार्थियोंको राजनीति-की तरफ नहीं खींचा ? फिर आज वह ऐसा कैसे कहते हैं ?" मैं जानता हूं कि यह सच नहीं है; लेकिन यह जरूरी है कि आप अपने विचारोंको फिरसे जांचें ।

"दूसरी बात यह है कि विद्यार्थियोंके संघ क्या करें ? इसे कुछ विस्तारसे आपको बताना होगा । देशमें उनका एक संघ किस उद्देश्यसे बने ? आज तो आप जानते हैं कि विद्यार्थी-संघ राजनैतिक जीवनमें पांव रखनेके साधन समझे जाते हैं । कुछ लोग उनसे यही बेजा फायदा उठाते हैं । सिर्फ विद्याके लिए ही संघ बनाया जाय तो उसके लिए क्या करना चाहिए, यह आप लिखें तो बड़ा लाभ हो ।

"गुजरातके लिए नई यूनिवर्सिटीका विचार करनेके लिए बम्बई-सरकारने एक कमेटी कायम की है । उसके बारेमें लोग आपके विचार जानना चाहते हैं । अब आपको इसके लिए भी समय निकालना होगा ।"

कच्ची बुद्धि कैसा नुकसान करती है यह तो मैंने इसी हफ्तेमें देख लिया । विद्यार्थियोंकी एक खास सभामें मुझे यहांके वाइसचांसलर ले गए थे । विद्यार्थियोंने बिना विचारे शहीदसाहबके बारेमें बदतमीजी दिखाई । बादमें वे ठीक रास्तेपर आए और पछताने लगे । और उन्होंने यह बात कर दिखाई कि सच्चा रास्ता दिखानेवाला मिले तो वह उनकी कच्ची बुद्धिका अच्छा इस्तेमाल करके उसे कैसे पक्की

बना देता है। यह चीज इस अंकमे[1] छपे मेरे प्रार्थनाके बादके भाषणोसे साफ समझमे आ जायगी।

'हरिजनबधु'मे अग्रेजीसे गुजरातीमे तरजुमा किया गया होगा। मुझे आशा है कि यह तरजुमा बिलकुल ठीक होगा। अग्रेजी, मेरे हिंदुस्तानीमे दिए गए भाषणका तरजुमा है। असल हिंदुस्तानी तो कौन भेज सकता है? ऐसी सहूलियत मै अपने आप खो बैठा हू। प्यारेलालजी और सुशीलाबहन ज्यादा उपयोगी सेवामे लगे हुए है। राजकुमारीकी सेवा और मदद तो मुझे महीनोसे नही मिल रही है। उनका उपयोग भी आज ज्यादा बड़े काममें हो रहा है।

आखिरी सवाल मै पहले लेता हू:

विद्यार्थियोका एक ही सघ बने तो उसमेसे बडी भारी ताकत पैदा होगी और वह देशकी बहुत सेवा कर सकेगा। उसका ध्येय एक ही हो सकता है देशकी सेवा करना, पैसा कमाना नही। अगर विद्यार्थी ऐसा करेगे तो उनका ज्ञान खूब बढ़ेगा। हलचलोमे सिर्फ वे ही लोग हिस्सा ले, जो पढाई खतम कर चुके है। पढ़ते समय तो विद्यार्थियोंको अपना ज्ञान बढ़ानेका काम ही करना चाहिए। आजकी शिक्षा देशके हितको नुकसान पहुचानेवाली है। यह दिखाना सभव है कि आजकी शिक्षासे देशको थोड़ा फायदा हुआ और हो रहा है; लेकिन मेरी नजरमे वह कुछ नही है। कोई उससे

---

[1] ७ सितम्बर १९४७ के 'हरिजनबंधु'में प्रकाशित २९ अगस्त १९४७ को कलकत्तेमें दिया गया भाषण।

धोखा न खाय। उसके फायदेमंद होनेकी सबसे बड़ी कसौटी है कि आज खाने और कपड़ेकी जो भारी तंगी है उसमे—खूराक और कपड़ेकी पैदावारमे—क्या यह शिक्षा कोई मदद पहुंचाती है? आजकी नादानीभरी हत्या और खूरेजीको दबानेमें वह क्या हिस्सा लेती है? हर देशकी पूरी शिक्षा उसे तरक्की-की तरफ ले जानेवाली होनी चाहिए। इससे कौन इन्कार करेगा कि हिंदुस्तानमे दी जानेवाली शिक्षासे यह उद्देश्य पूरा नही होता? इसलिए विद्यार्थियोके संघका एक ध्येय यह होना चाहिए कि वे आजकी शिक्षाके दोष खोजे और अपनेमे पाए जानेवाले उन दोषोंको दूर करे। अपने सही कामसे वे शिक्षाके महकमोको अपने विचारका बना सकेंगे। अगर विद्यार्थी ऐसा करेंगे तो वे राजनैतिक दलबंदीमे नहीं फंसेंगे। संघकी नई योजनामे रचनात्मक कामको कुदरती तौर-पर उचित जगह मिलेगी। इससे देशकी राजनीति शुद्ध बनी रहेगी।

अब मै पहला सवाल लेता हूं:

आजादीकी लड़ाईके समय मैंने विद्यार्थियोकी शिक्षाके बारेमे क्या कहा था वह भुला दिया गया मालूम होता है। स्कूलो और कालेजोमे रहकर मैंने विद्यार्थियोको राजनीतिमें पड़नेकी बात नही सिखाई थी। मैंने तो उन्हें अहिंसक असहयोग सिखाया था, स्कूल और कालेज खाली करके देश-सेवाके काममें लगना सिखाया था। नए विद्यापीठ और नए कालेज या स्कूल खोलनेकी कोशिश की थी। बदकिस्मतीसे चालू शिक्षाका जाल इतना मजबूत था कि उसमेंसे थोड़े ही लोग

बाहर निकल पाए थे। इसलिए यह कहना ठीक नही कि पहले मैंने विद्यार्थियोको राजनीतिमे खीचा था। इसके सिवा जब मै २० सालतक दक्षिण अफ्रीकामे रहकर १९१५मे वापिस आया तव स्कूलों और कालेजोमे पढते हुए भी, विद्यार्थी देशकी राजनीतिकी तरफ खिच चुके थे। उस समय शायद इसके सिवा दूसरा कुछ करना असंभव था। विदेशी शासकोने देशकी सारी रचना ऐसी बना रखी थी कि देशको गुलामीके फंदेसे छुडाने लायक राजनीतिमे कोई पड ही नही सकता था। उन्होने शिक्षाका सारा काम अपने हाथमे रखकर करोड़ोको अज्ञानके अंधेरेमे पडे रहने दिया और विदेशी हुकूमतको मजबूत बनाया। इससे विदेशी हुकूमतके कायम किए हुए स्कूलों और कालेजोके सिवा दूसरा कोई साधन देशभक्त कार्यकर्ताओके सामने रह नही गया था। इस साधनसे कहातक बेजा फायदा उठाया गया है, इसकी यहां जाच करनेकी जरूरत नही।

कलकत्ता, ३०-८-'४७

: १६ :

अहिंसा सफल या असफल ?

सवाल—जब आप नोआखालीमें थे तब अक्सर कहा करते थे कि अगर मुझे अपने मिशनमें कामयाबी न मिली तो वह मेरी अपनी अहिंसाकी नाकामयाबी—होगी, खुद अहिंसाकी नही। यहां कलकत्तेमें जो सफलता

मिली है उसे देखते हुए क्या आप सोचते है कि आपकी अहिंसा कामयाब हुई है या कामयाबीके रास्तेपर है ?

जवाब--अहिसाके वारेमें मेरे विचारोंका यह सही बयान है। अहिसा हमेशा अचूक होती है। इसलिए जब वह नाकाम हुई दिखाई पड़े तो वह नाकामी, अहिसाका उपयोग करनेवालेकी अयोग्यताकी वजहसे है। मैंने कभी यह महसूस नही किया कि नोआखालीमे मेरी अहिंसा असफल रही है, न यही कहा जा सकता कि वह सफल हुई है। अभी तो उसकी जाच हो रही है। और जव मै अपनी अहिंसाके बारेमे बोलता हूं तो मै उसे अपने तक ही सीमित नही मानता। उसमे नोआखालीमे मेरे साथ काम करनेंवालें भाई भी शामिल हैं। इसलिए वहा मिलनेवाली सफलता या असफलताका श्रेय मेरे और मेरे साथियोके सम्मिलित कामको मिलेगा।

नोआखालीके वारेमे मैने जो कुछ कहा है, वह कलकत्तेपर भी लागू होता है। अभी यह नही कहा जा सकता कि इस बड़े शहरमे साप्रदायिक सवालको हल करनेमें जो अहिसाका उपयोग किया गया है, उसकी सफलतामे कोई संदेह नही है। जैसा कि मै पहले ही कह चुका हूं, कलकत्तेके दो फिरकोमे दोस्ती कायम होनेकी वातको चमत्कार मानना गलती है। इसके लिए परिस्थिति तो पहलेसे ही तैयार थी। इतनेमें शहीदसाहव और मै इसका श्रेय लेनेके लिए सामने आ गए। जो हो, अहिसाके प्रयोगकी सफलता या असफलताके वारेमे अभीसे कोई वात कहना जल्दवाजी होगी। सबसे पहली

काचोंके टूटनेकी आवाज सुनी। मेरे दोनों तरफ दो बहुत बहादुर लडकिया लेटी हुई थी। वे सोई नही थी। मेरे बिना जाने—क्योकि मेरी आंखे बद थी—वे उस थोडी-सी भीडमें गई और उसे शांत करनेकी उन्होने कोशिश की। भगवानको धन्यवाद है कि उस भीडने उन्हे कोई नुकसान नही पहुचाया। उस परिवारकी बूढी मुस्लिम महिला, जिसे सब बड़े प्रेमसे 'बी अम्मा' कहते थे, और एक मुस्लिम नौजवान, शायद खतरेसे मेरी हिफाजत करनेके लिए, मेरे बिस्तरके पास आकर खड़े हो गए। भीड़का शोर-गुल बढ़ता ही गया। कुछ लोग बीचके बडे कमरेमे घुस आए और कई दरवाजोको धक्के मारकर खोलने लगे। मैंने महसूस किया कि मुझे उठकर गुस्सेसे भरी उस भीडके सामने जरूर जाना चाहिए। मै उठा और एक दरवाजेकी देहलीजपर जाकर खड़ा हो गया। दोस्तोने मुझे घेर लिया और आगे जानेसे मुझे रोकने लगे। मै अपने मौन-व्रतको ऐसे मौकोपर तोड़ देता हूं। इसलिए मैंने अपना मौन तोडकर उन गुस्सेसे भरे हुए नौजवानोंसे शात होनेकी अपील करना शुरू किया। मैंने कनु गांधीकी बगाली पत्नी आभासे कहा कि वह मेरे कुछ शब्दोका बगालीमे तरजुमा कर दे। वह भी किया गया, मगर कोई फायदा नही हुआ। मानो उन लोगोने समझदारीकी कोई भी बात सुननेके लिए अपने कान बंद कर लिए थे।

मैंने और कुछ न करके हिंदू ढगसे अपने दोनो हाथ जोड़े। और ज्यादा खिडकियोके काच टूटनेकी आवाज आने लगी। उस भीडमे जो दोस्ताना रुखवाले लोग थे, उन्होने भीड़को

शांत करनेकी कोशिश की। पुलिस अफसर भी वहा मौजूद थे। उनके लिए यह तारीफकी बात है कि उन्होने अपनी सत्ताका उपयोग करनेकी कोशिश नही की। उन्होंने भी भीडसे शांत होनेकी अपील करते हुए अपने हाथ जोडे। मुझपर लाठीका एक वार हुआ, जो मुझे और मेरे आसपास खडे हुए लोगोको लगते-लगते बचा। मुझे निशाना बनाकर फेंकी गई एक ईंट मेरे पास खडे हुए एक मुसलमान दोस्तको लगी। वे दो लडकिया मुझे जरा-सी देरके लिए भी नही छोडना चाहती थी और आखिरतक वे मेरे पास बनी रही। इतनेमे पुलिस सुपरिटेंडेट और उनके अफसर भीतर आए। उन्होंने भी जोर-जबरदस्ती नही की। उन्होने मुझसे दरख्वास्त की कि मै भीतर चला जाऊं, तब उन्हे उन नौजवानोको शात करनेका मौका मिलेगा। कुछ देर बाद भीड वहासे हट गई।

अहातेके फाटकके बाहर जो कुछ हुआ, उसके बारेमे मैं सिर्फ इतना ही जानता हू कि भीड़को हटानेके लिए पुलिसको अश्रुगैसका इस्तेमाल करना पडा था। इसी बीच डा० पी० सी० घोष, आनदबाबू और डा० नृपेन भीतर आए और मुझसे कुछ चर्चा करनेके बाद चले गए। दूसरे दिन मेरा नोआखाली जानेका इरादा था, इसलिए खुशकिस्मतीसे शहीदसाहब उसकी तैयारी करनेके लिए उस दिन अपने घर चले गए थे। ऊपर दी हुई बेहूदा घटनाका खयाल करके मै कलकत्ता छोडकर नोआखाली जानेकी बात सोच भी न सका, क्योकि वह घटना कलकत्ताको किस हालतमे पहुचा देगी यह कोई नही कह सकता था।

इस घटनाका सबक क्या है ? मै साफ तौरपर समझ गया हू कि अगर हिंदुस्तानको महंगे दामो हासिल की हुई अपनी आजादीको टिकाए रखना है तो सब मर्दो और औरतोंको मारपीट और जोर-जबरदस्तीके कानूनको पूरी तरह भूल जाना होगा। जो कुछ लोगोंने करना चाहा वह तो इस जंगली कानूनकी भद्दी नकलमात्र है। अगर मुसलमानोंने बुरा वर्ताव किया था और इसकी शिकायत करनेवाले लोग मंत्रियोके पास नही जाना चाहते थे तो वे मेरे या मेरे दोस्त शहीद-साहबके पास आ सकते थे। यही बात उन मुसलमानोंपर भी लागू होती है जिन्हे कोई शिकायत करनी है। अगर सभ्य समाजके बुनियादी नियमोंपर अमल नही किया जाता तो कल-कत्ता या दूसरी किसी भी जगह शांति बनाए रखनेका कोई रास्ता नही है। जनता, पंजाबमे या हिंदुस्तानके वाहर होने-वाले वहशियाना कामोपर ध्यान न दे। यह सुनहला नियम सबपर एक ही रूपमे लागू होता है कि कोई शख्स कानूनको कभी भी अपने हाथमे न ले।

मेरे सेक्रेटरी देवप्रकाशने, जो पटनामे है, तारके जरिये मुझे यह खबर दी है—"पंजाबकी घटनाओसे जनतामे उत्तेजना है। अखबारोंको और जनताको उनके कर्त्तव्यकी याद दिलाने-वाला आपका बयान जरूरी मालूम होता है।" श्रीदेवप्रकाश कभी विना कारण उत्तेजित नही होते। अखवारोमे जरूर कुछ गैर-जिम्मेदार शब्द निकले होंगे। इस समय जब कि हम वारूदखानेपर वैठे हुए हैं, चौथा स्टेट—प्रेस—को वहुत ज्यादा समझदार और मौन होनेकी जरूरत है। इस समय

अविवेक चिनगारीका काम करेगा। मुझे उम्मीद है कि हर संपादक और संवाददाता पूरी तरह अपने फर्जको समझेगा।

मुझे एक बात यहां जरूर कह देनी चाहिए। पंजाबसे मुझे एक जरूरी संदेशा मिला है कि मै जल्दी-से-जल्दी वहां पहुंचू। मै कलकत्तामे होनेवाली अशांतिके बारेमे सब तरहकी अफवाहे सुनता हू। मुझे उम्मीद है कि अगर वे बिलकुल बेबुनियाद नही है तो बढा-चढ़ाकर जरूर कही गई है। कलकत्ताके लोगोको फिरसे मुझे विश्वास दिलाना होगा कि यहां कोई गड़बड़ी नही होगी और जो शाति एक बार कायम हो चुकी है, वह भग नही होगी।

पिछली १४ अगस्तसे जब यहा शाति नजर आई तभीसे मैं कहता आया हूं कि यह सिर्फ थोडे ही दिनोकी शाति हो सकती है। इस शांतिके कायम होनेका कारण कोई चमत्कार नही था। क्या मेरी आशंका सच साबित होगी और कलकत्तामें फिरसे वहशियाना वारदाते होने लगेगी? हम उम्मीद करे कि ऐसा नही होगा। हम प्रभुसे प्रार्थना करे कि वह हमारे दिलोंको छू दे, ताकि हम अपने पागलपनको फिरसे न दोहरादे।

ऊपरकी बाते लिखनेके बादसे, यानी करीब चार बजेके बादसे शहरके अलग-अलग हिस्सोमे होनेवाली घटनाओका पूरा-पूरा हाल मेरे पास आ रहा है। कुछ जगहे, जो कलतक सुरक्षित थी, अचानक खतरनाक बन गई हैं। कई लोग मारे गए है। मैने दो बहुत गरीब मुसलमानोंकी लाशे देखी। कुछ फटेहाल मुसलमानोको किसी हिफाजतकी जगहकी तरफ

गाड़ियोमे हटाए जाते हुए देखा। मै अच्छी तरह जानता हूं कि पिछली रातकी जिन घटनाओका इतने विस्तारसे ऊपर बयान किया गया है, वे इस आगके सामने बहुत मामूली है। इस खुली आगमे घुसकर मै जो कुछ करूं, उसमेंसे एक भी ऐसी बात मुझे नजर नही आती, जो इस आगको काबूमे कर सके।

जो मित्र मुझे शामको मिले थे उन्हे मैंने बतला दिया है कि इस समय उनका फर्ज क्या है, दगेको रोकनेके लिए मुझे क्या करना चाहिए। सिक्खों और हिंदुओको भूलना नही चाहिए कि इन कुछ दिनोमे पूरबी पंजाबने क्या किया है। अब पश्चिमी पजाबके मुसलमानोने अपने पागलपनभरे काम शुरू किए है। कहा जाता है कि पजाबकी वारदातोसे सिक्ख और हिंदू गुस्सा हो उठे है।

मै ऊपर बतला चुका हूं कि पंजाबसे मुझे जरूरी बुलावा आया है, मगर जब कलकत्तामे दगेकी आग फिरसे भडकी हुई जान पडती है तब मै कौन-सा मुह लेकर पंजाब जा सकता हूं? अभीतक जो हथियार मेरे लिए अचूक साबित हुआ है, वह है उपवास। जोर-जोरसे चिल्लाती हुई भीड़के सामने जाकर खडे हो जाना हमेशा काम नही देता। पिछली रातको उससे सचमुच कोई फायदा नही हुआ। जो काम मेरे मुहसे निकले हुए शब्द नही कर सकते, उसे शायद मेरा उपवास कर दे। अगर कलकत्ताके सारे दंगाइयोके दिलोपर उसका असर हो जाय तो पंजाबके दगाइयोके दिलोको भी वह छू सकता है। इसलिए आज रातको सवा आठ बजेसे मै अपना उपवास शुरू करता हू। वह सिर्फ उसी हालतमे और तभी खत्म होगा

जब कलकत्ताके लोग अपना पागलपन छोड देंगे । उपवासके दरमियान जब मेरी पानी पीनेकी इच्छा होगी तब मै हमेशाकी तरह नमक और सोडा-बाइकार्ब मिला हुआ पानी लूंगा ।

अगर कलकत्ताके लोग चाहते हैं कि मै पंजाब जाकर वहांके लोगोकी मदद करूं तो उन्हें जितनी हो सके उतनी जल्दी मेरा उपवास तुड़वाना चाहिए ।

कलकत्ता, १-९-'४७

: १८ :

सही या गलत ?

गुजरातीमे मुझे लिखे गए एक खतका सारांश नीचे देता हू .

"१५ सितंबर १९२७ के 'यंग इंडिया'में आपका मद्रासमें दिया हुआ जो भाषण छपा है उसमें आपने कहा है कि जो धर्म, शुद्ध अर्थके खिलाफ हो, वह धर्म नहीं है; और जो अर्थ धर्मके खिलाफ हो, वह शुद्ध नहीं है, इसलिए वह छोड़ देने लायक है ।

"मै तो जानता ही हूं कि एक अरसेसे आपका यह मत रहा है । मगर इसे सबने माना कब है ? इसलिए मुझे लगता है कि आज धर्मके नामपर होनेवाली खूंरेजीको शांत करनेमें आप जो अपना सारा वक्त और ताकत खर्च कर रहे है, यह ठीक नहीं है । आपका रचनात्मक कार्यक्रम आज कहां चल रहा है ? कांग्रेसके हाथमें आज हिंदुस्तानके बड़े हिस्सेकी बागडोर है । अब तो आजादी मिल गई । अंग्रेज चले गए । तब फिर

आप अपने रचनात्मक कामको आगे बढ़ाकर यह साबित करनेमें पूरा वक्त क्यों नहीं लगाते कि धर्म और अर्थ दो विरोधी चीजें नहीं हैं ? आज-कल होनेवाले आर्थिक अन्यायके खिलाफ आप कुछ भी नहीं लिखते, इससे भले लोग यही मानते हैं कि कांग्रेस-सरकार जो कुछ करती है, उसमें आपका आशीर्वाद होता ही है। लेकिन मैं तो यह मानता हूं कि आप ही रचनात्मक कामके जन्मदाता होकर आज उसे दफना रहे हैं। आज खादी या ग्रामोद्योगके अर्थशास्त्रके आधारपर स्वावलंबनसे चलनेवाली एक भी संस्था कहीं देखनेमें नहीं आती।"

ऊपर की बात आवेगमे लिखी गई है। इससे लिखने-वाले भाई आधी सच बात ही कह सके है। खास बात यह है कि हिंदू-मुस्लिम-एकताकी बात मेरे मनमे तबसे समाई हुई है, जब कि खादी और उसके आसपासके ग्राम-उद्योगोकी बात मेरे सपनेमे भी नही थी।

जब मैं बारह वर्षकी उम्रमे एक मामूली विद्यार्थीकी तरह पहली अंग्रेजी क्लासमे भर्ती हुआ था, तभीसे मैं अपने मनमे यह मानने लगा था कि हिंदू, मुसलमान, पारसी सब एक ही हिंदुस्तानकी संतान है और इसलिए उनमे आपसमे भाईचारा होना चाहिए। यह सन् १८८५ से पहलेकी बात है, जब कि कांग्रेसका जन्म भी नहीं हुआ था। इसके सिवा यह एकता कायम करनेका काम रचनात्मक कामका एक ऐसा अंग है, जिसे अलग नही किया जा सकता। इसके लिए मैंने बहुतसे खतरे मोल लिए है और मैं मानता हूं कि अगर यह न हो तो दूसरे रचनात्मक काम चल ही न सके। कम-से-कम मेरे हाथों तो चल ही न सके। मुझसे यह नही हो सकता। खत लिखनेवाले भाईकी दलीलके मुताबिक तो मुझे नोआखाली नही जाना चाहिए था, बिहार

नही दौड़ना था। यानी जो काम मै जानता हूं, जिसे मैंने बरसोंसे किया है, उस कामको कसौटीके वक्त भूल जाऊं। यह कैसे हो सकता है? इसे भूलकर मै दूसरे रचनात्मक कामके पीछे दौडू तो यह अपना धर्म छोडना होगा और इससे फायदा तो कुछ होनेवाला है नही।

जिन कांग्रेस-सेवकोके हाथमे आज वागडोर है, वे मेरे साथी है। यह भी कहा जा सकता है कि इन सवने मेरे साथ ही कांग्रेसमे तरक्की की और ऊंचे उठे। अगर मै अपना अर्थशास्त्र इनके गले न उतार सका तो फिर किसे समझा सकूगा? शासनकी बागडोर हाथमे आनेके वाद उनकी बुद्धि कबूल नही करती कि वे जनतासे खादीशास्त्र मंजूर करा सकेगे या ग्राम-उद्योगोके मारफत गावोको नई जिदगी दे सकेगे। खत लिखनेवाले भाईका सुझाव है कि मुझे श्री जाजूजी[1]को और श्रीकुमारप्पा[2]-को हिंदुस्तानकी वागडोर लेनेके लिए तैयार करना चाहिए। यह कैसा भ्रम है? इस तरह किसीको तैयार करनेवाला मै कौन होता हूं? पचायत-राज एक हाथसे नही चल सकता। जिनके हाथोमे शासन है, उनकी जगह लेनेवाला कोई ज्यादा बलवान और विवेकशील आदमी हो, तो आज उन्हे हटना पड़े। जहांतक मै इन लोगोको जानता हूं, वहांतक कह सकता हूं कि ये लोग हुकूमतके भूखे नही है। इसलिए जव कोई ज्यादा लायक आदमी पैदा होगा तव उसे पहचाननेमे इन्हे देर नही

---

[1]श्री कृष्णदास जाजू।

[2]श्री जे० सी० कुमारप्पा।

लगेगी और ये लोग खुशीसे उसके हाथमे हुकूमत सौपकर अपना जीवन सफल मानेगें ।

ऐसी भूल कोई न करे कि मै यह जगह ले सकता हूं । अगर मै प्रधान बननेके लिए तैयार होऊं तो ये लोग मेरा स्वागत करेगे, मगर मुझमें राम नही है । मै खुद रामका पुजारी हूं, उसका भक्त हूं । मगर रामके सब भक्त, राम थोड़े ही बन सकते है ? हमे तो राम रखे, उसी तरह रहना चाहिए ।

इसके सिवा, यह बात ध्यान देने लायक है कि जो काम मै अपने तरीकेसे कर रहा हूं, वही काम उनके अपने तरीकेसे करनेमे ही उनका सारा वक्त जाता है; क्योंकि वे समझते है कि जबतक सांप्रदायिक सवाल नही सुलझता तबतक हिंदुस्तानमे शांति नही हो सकती । और जबतक शांति नही होगी तबतक प्रजाके दूसरे सारे काम यों ही पडे रहेगे ।

अंतमें मुझे खत लिखनेवाले भाईने अपने जैसे विचार प्रकट किए है, वैसे विचार रखनेवालोको समझना चाहिए कि अगर रचनात्मक कार्यक्रमपर करोड़ो इन्सानोसे अमल कराना हो तो इसके लिए हजारो कार्यकर्ताओंकी जरूरत है, भले ही यह योजना एक इन्सानके दिमागसे निकली हो । लोगोके सामने इसे रखे बरसो बीत गए है । अखिल भारत-चरखा-संघ, ग्राम-उद्योग-संघ, गो-सेवा-संघ, हिंदुस्तानी प्रचार-संघ, आदिवासी-सेवा-संघ, हरिजन-सेवक-संघ वगैरह पैदा हुए । वे आज जिंदा है और अपनी ताकतके अनुसार काम कर रहे है । ये सब धर्म और अर्थका समीकरण समझ चुके है । सांप्रदायिक मेल-मिलापका काम करते हुए मै ऊपरके सारे कामोमे पहले-जैसा ही रस ले

रहा हूं, शक्तिके अनुसार उसमे अपना सिर भी खपा रहा हूं। अब इससे ज्यादा मुझसे उम्मीद भी न करनी चाहिए। आज जिसे मै अपना फर्ज मान बैठा हूं, लालचमें पड़कर उससे मुझे डिगना नही चाहिए। ऊपरकी चेतावनी देनेके बदले, मुझे सावधान करनेके बदले, यह जरूरी है कि खत लिखनेवाले भाई जैसे सभी लोग सावधान होकर अपने काममे लग जायं।

मैने सैकडों बार कहा है कि हमारे हाथमे हुकूमतका होना जरूरी नही है। जिन्हे हम हाकिम बनाते है, उन्हे सावधान रखना चाहिए। नेता तो गिनतीके होंगे, मगर जनता अपनी ताकत और अपने धर्मको समझ ले और उसके अनुसार काम करे, तो सब कुछ अपने आप ठीक हो सकता है। हमे आजादी भोगते अभी तो सिर्फ अठारह दिन ही हुए है, इतनेमे यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि सारा काम अपने आप हो जाय ? जिनके हाथोंमें जनताने हुकूमत सौंपी है, वे भी नई परिस्थितिके लिए पहलेसे तैयार नही है, बल्कि तैयार हो रहे है।

कलकत्ता, ४–९–'४७

: १६ :

बिहार बिहारियोंके लिए और हिंदुस्तान ?

बिहार, सचमुच बिहारियोके लिए है, लेकिन वह हिंदुस्तानके लिए भी है। जो बात बिहारके बारेमे सच है वही यूनियनके दूसरे सब सूबोके बारेमे भी सच है। किसी भी

हिंदुस्तानीके साथ बिहारमे परदेशीकी तरह बर्ताव नही किया जा सकता, जैसा कि शायद उसके साथ आजके पाकिस्तानमें या एक पाकिस्तानीके साथ हिंदुस्तानमे किया जा सकता है। अगर हम मुसीबतो और आपसी जलनसे बचना चाहते हैं तो हमे इस फर्कका ध्यान रखना चाहिए।

इसलिये हालांकि यूनियनके हर हिंदुस्तानीको बिहारमें बसनेका हक है, फिर भी उसे बिहारियोंको उखाडने या उनके हक छीननेके लिए ऐसा नही करना चाहिए। अगर इस शर्तपर अच्छी तरह अमल नही किया गया तो संभव है कि बिहारमे गैर-बिहारी हिंदुस्तानियोकी ऐसी बाढ आ जाय कि बिहारियोंको बडी तादादमे अपने सूबेसे बाहर निकलना पड़े। इस तरह हम इस नतीजेपर पहुचनेके लिए मजबूर हो जाते है कि जो गैर-बिहारी हिंदुस्तानी, बिहारमे जाकर बसता है, उसे बिहारकी सेवाके लिए ही ऐसा करना चाहिए, न कि हमारे पुराने मालिकोकी तरह उसे चूसने और लूटनेके लिए।

इस विषयकी इस तरह जांच करनेसे हमारे सामने जमीदारो और रैयतका सवाल खडा होता है। जब कोई गैर-बिहारी पैसा पैदा करनेके लिए बिहारमे जाकर बसता है तो बहुत सभव है कि वह जमीदारसे मिलकर रैयतको चूसनेके लिए ऐसा करे। लेकिन जमीदार सचमुच रैयतके लिए अपनी जमीदारीके ट्रस्टी बन जाय तो ऐसा अपवित्र गुट्ट कभी बन ही नही सकता। बिहारमे जमीदारीका कठिन सवाल अभी हल किया जानेको है। हम तो यह पसद करेंगे कि बिहारके छोटे और बडे जमीदारो, उनकी रैयत और सरकारके बीच कोई

ऐसा उचित निष्पक्ष और संतोषके लायक समझौता हो, जिससे, कानून पास हो जानेपर ऐसा मौका न आए कि कोई उसपर अमल न करे, या जमीदारों या रैयतके साथ जबरदस्ती करनेकी जरूरत पडे। काश, सारे हिंदुस्तानमें बिना खून बहाए और बिना जबर्दस्ती किए ये सारे फेरफार—जिनमेंसे कुछ क्रांतिकारी भी होने चाहिएं—हो जाय! यह तो हुआ हिंदुस्तानके दूसरे सूबोंसे आकर बिहारमे बसनेवालोंके लिए।

वहांकी नौकरियोंका क्या हो? ऐसा लगता है कि अगर यूनियनके सारे सूबोंको हर दिशामें एक-सी तरक्की करनी हो तो हर सूबेकी नौकरिया, पूरे हिंदुस्तानकी तरक्कीके खयालसे ज्यादातर वहाके रहनेवालोंको ही दी जानी चाहिए। अगर हिंदुस्तानको दुनियाके सामने स्वाभिमानसे सिर ऊचा रखना है तो किसी सूबे और किसी जाति या तबकेको पिछडा हुआ नही रखा जा सकता। लेकिन अपने उन हथियारोके बलपर हिंदुस्तान ऐसा नही कर सकता, जिनसे दुनिया ऊब उठी है। उसे अपने हर नागरिकके जीवनमे और हालमे ही मेरे द्वारा 'हरिजन' मे बताए गए समाजवादमे प्रकट होनेवाली अपनी स्वभावजन्य सस्कृतिके द्वारा ही चमकना चाहिए। इसका यह मतलब है कि अपनी योजनाओं या उसूलोको जनप्रिय बनानेके लिए किसी भी तरहकी ताकत या दबावको काममे न लिया जाय। जो चीज सचमुच जन-प्रिय है, उसे सबसे मनवानेके लिए जनताकी रायके सिवा दूसरी किसी ताकतकी शायद ही जरूरत हो। इसलिए बिहार, उड़ीसा और आसाममे कुछ लोगोद्वारा की जानेवाली हिंसाके जो बुरे दृश्य देखे गए, वे

कभी नही दिखाई देने चाहिए थे। अगर कोई आदमी नियमके खिलाफ काम करता है या दूसरे सूबोंके लोग किसी सूबेमे आकर वहांके लोगोंके हक मारते हैं तो उन्हे सजा देने और व्यवस्था कायम रखनेके लिए जन-प्रिय सरकारें सूबोंमें राज कर रही है। सूबोंकी सरकारोंका यह कर्तव्य है कि वे दूसरे सूबोसे अपने यहां आनेवाले सब लोगोकी पूरी-पूरी हिफाजत करे। "जिस चीजको तुम अपनी समझते हो, उसका ऐसा इस्तेमाल करो कि दूसरेको नुकसान न पहुंचे"—यह समानताका जाना-पहचाना उसूल है। यह नैतिक बर्तावका भी सुंदर नियम है। आजकी हालतमे यह कितना उचित मालूम होता है !

यहातक मैंने सूबेमे आनेवाले नए लोगोके बारेमे कहा। लेकिन उन लोगोका क्या, जिनमेसे कुछ बिहारमे १५ अगस्तके दिन सरकारी नौकरियोमे और कुछ खानगी नौकरियोमें थे ? जहांतक मेरा विचार है, ऐसे लोग जबतक दूसरा चुनाव नही करते तबतक उनके साथ बिहारियोकी तरह ही बरताव किया जाना चाहिए। कुदरती तौरपर उन्हे परदेशियोंकी तरह अलग बस्ती नही बनानी चाहिए। "रोममे रोमनोंकी तरह रहो"—यह कहावत जहांतक रोमन बुराइयोसे दूर रहती है, वहांतक समझदारीसे भरी और फायदा पहुंचानेवाली कहावत है। एक दूसरेके साथ घुल-मिलकर तरक्की करनेके काममे यह ध्यान रखना चाहिए कि बुराइयोंको छोड़ दिया जाय और अच्छाइयोंको पचा लिया जाय। बगालमें एक गुजरातीके नाते मुझे बगालकी सारी अच्छाइयोको तुरत पचा लेना चाहिए

और उसकी बुराईको कभी छूना भी नही चाहिए । मुझे हमेशा बंगालकी सेवा करनी चाहिए, उसे अपने फायदेके लिए चूसना नही चाहिए । दूसरोसे बिलकुल अलग रहनेवाली हमारी प्रातीयता जिदगीको बरबाद करनेवाली चीज है । मेरी कल्पनाके सूबेकी हद सारे हिंदुस्तानकी हदोंतक फैली हुई होगी, ताकि अतमे उसकी हद सारे विश्वकी हदोतक फैल जाय, वर्ना वह खतम हो जायगा ।

दिल्ली जाते हुए, रेलमे ८–९–'४७

: २० :

नशीली चीजोंकी मनाही

इस सुधारके लिए आज सबसे अच्छा मौका है । आज देशमें पंचायतका राज है । हिंदुस्तानके दोनो हिस्सोके साथ-साथ देशी राज भी इस सुधारके लिए तैयार है । दोनो हिस्सोंमे भुखमरी फैली हुई है । न खानेको अनाज मिलता है, न पहननेको कपडा । जब लोग भुखमरी और नगेपनके किनारे खड़े हो तब शराब, अफीम वगैरहके बारेमे सोचा भी नही जा सकता । शराव और अफीम पीनेवाले लोग पैसा तो बरबाद करते ही है, साथ ही अपने आपपर काबू भी खो देते है । नशेके असरमे आदमी न करने लायक काम भी कर बैठता है । इसलिए हर तरहसे विचारते हुए नशीली चीजोंका खाना और पीना बंद होना ही चाहिए ।

हम सिर्फ कानून पास करके ही इस बुराईको खतम नही कर सकते। नशा करनेवाले चाहे जहांसे नशीली चीजें लाकर खाएं-पिएंगे। इनके बनानेवाले और बेचनेवाले काला बाजार बंद करनेके लिए एकदम तैयार नही होंगे।

इसलिए नीचेकी तमाम बाते एक साथ की जानी चाहिए :

(१) जरूरी कायदा बनाया जाय,

(२) लोगोको नशेकी बुराई समझाई जाय,

(३) शराबकी दूकानोपर ही सरकारको पीनेकी निर्दोष चीजोकी दुकाने कायम करनी चाहिएं। और वहां किताबों, अखबारो और खेलोके रूपमे मनबहलावके निर्दोष साधन रखने चाहिए।

(४) शराब, अफीम वगैरह बेचनेसे जो आमदनी हो, वह सब लोगोको नशीली चीजे न बरतनेकी बात समझानेमें खर्च की जानी चाहिए।

(५) नशीली चीजोकी बिक्रीसे होनेवाली आमदनीको राष्ट्रके बच्चोकी शिक्षामे या जनताको फायदा पहुंचानेवाले दूसरे कामोंमे खर्च करना बडा पाप है। सरकारको ऐसी आमदनी राष्ट्र-निर्माणके कामोमे खर्च करनेका लालच छोड़ना ही चाहिए। अनुभव यह बताता है कि नशीली चीजोका खान-पान छोडनेवालेको जो फायदा होता है उसे सारी प्रजाका फायदा समझना चाहिए। अगर हम इस बुराईको जड़से खतम कर दे तो हमे राष्ट्रकी आमदनी बढ़ानेके दूसरे बहुतसे रास्ते और साधन आसानीसे मिल जायंगे।

दिल्ली जाते हुए, रेलमे, ८–९–'४७

: २१ :

मंत्रियोंकी जिम्मेदारी

मेरे पास ऐसे बहुतसे खत आए है, जिनमे लिखनेवाले भाइयोंने हमारे मत्रियोके रहन-सहनको आरामतलब कहकर उसकी कड़ी आलोचना की है। उनपर यह आरोप लगाया गया है कि वे पक्षपातसे काम लेते है और अपने रिश्तेदारोको ही आगे बढाते है। मै जानता हू कि बहुत-सी आलोचना तो, आलोचकोकी बेजानकारीकी वजहसे होती है। इसलिए मंत्रियोंको उससे दुःखी नही होना चाहिए। सिर्फ दोष वतलाने-वाली आलोचनामेसे भी उन्हे अपने लिए अच्छा हिस्सा ले लेना चाहिए। यदि मेरे पास आए हुए पत्र मै उनके पास भेज दू तो उन्हें ताज्जुब होगा। सभव है कि उनके पास इनसे भी बुरे खत आते हो। जो हो, इन खतोसे मै यही सबक लेता हू कि जहातक सादगी, धीरज, ईमानदारी और मेहनत करनेका संबंध है, ये 'आलोचक' जनताद्वारा चुने हुए सेवकोंसे दूसरोंकी अपेक्षा ज्यादा उम्मीद रखते हैं। शायद मेहनत और अनुशासनको छोडकर और किसी बातमे हमे पुराने अग्रेज शासकोंकी नकल नही करनी चाहिए। अगर एक तरफ मंत्री लोग उचित आलोचनासे फायदा उठाने लगे और दूसरी तरफ आलोचना करनेवाले भाई कोई बात कहनेमे संयम और पूरी-पूरी सचाईका खयाल रखे तो इस टिप्पणीका मकसद पूरा हो जायगा। गलत बात कहने या वातको बढ़ा-चढ़ाकर कहनेसे एक अच्छा मामला भी बिगड़ जाता है।

दिल्ली जाते हुए, रेलमे, ८–९–'४७

: २२ :

दिल्लीकी अशांति

'मेरे मन कछु और है, कर्ताके कछु और' वाली कहावत मेरे जीवनमे कई बार सच साबित हुई है, जैसी कि वह दूसरे बहुतसे लोगोके जीवनमे भी हुई होगी। जब मैने पिछले इतवारको कलकत्ता छोड़ा तो मै दिल्लीकी अशांत हालतके बारेमे कुछ भी नही जानता था। दिल्ली आनेके बाद मै सारे दिन यहांकी मौजूदा दर्दभरी कहानी सुनता रहा हू। मै कई मुसलमान दोस्तोसे मिला, जिन्होने अपनी करुण कहानी सुनाई। जितना कुछ मैने सुना, वह मुझे यह चेतावनी देनेके लिए काफी है कि जबतक दिल्लीकी हालत पहले-जैसी शात न हो जाय तबतक उसे छोडकर मुझे पंजाब नही जाना चाहिए।

इस गरम वातावरणको शात करनेके लिए मुझे अपनी कुछ कोशिश करनी ही चाहिए और हिंदुस्तानकी इस राजधानीके लिए 'मुझे करो या मरो' वाला अपना पुराना सूत्र काममे लेना ही चाहिए। मुझे यह कहते हुए खुशी होती है कि दिल्लीमे रहनेवाले लोग इस निरर्थक बरबादीको पसंद नही करते। मै उन शरणार्थियोके गुस्सेको समझता हू, जिन्हें दुर्भाग्यने पश्चिमी पंजाबसे खदेड़ दिया है। मगर गुस्सा पागलपनका छोटा भाई है। वह परिस्थितिको हर तरहसे बिगाड़ ही सकता है। इस मर्जका इलाज बदला लेना नही है। उससे असली बीमारी और ज्यादा बिगड़ती है। इसलिए जो लोग खून

करने, आग लगाने और लूट-मार करनेके नासमझीभरे कामोंमें लगे हुए हैं, उनसे मेरी विनती है कि वे अपना हाथ रोकें।

केंद्रीय सरकारमें हिंदुस्तानी संघके सबसे काबिल, हिम्मतवर और ज्यादा-से-ज्यादा आत्मबलिदानकी भावना-वाले लोग इस वक्त काम कर रहे हैं। आजादीका ऐलान होनेके बाद, उन्हें अपना काम संभाले अभी महीनाभर भी नहीं हुआ है। बिगड़े हुए कारबारको व्यवस्थित करनेका उन्हें मौका न देना गुनाह और आत्मघात करना है। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि देशमें अनाजकी कमी है। दंगोंकी वजहसे दिल्लीका सारा इंतजाम बिगड़ गया है, जिससे अनाज बांटनेका काम असंभव हो गया है। भगवान पागल बनी हुई दिल्लीमें फिरसे शांति कायम करे।

मैं इस उम्मीदके साथ अपनी बात खतम करता हूं कि मेरे विदा होते वक्त कलकत्ताने जो वचन दिया था, उसे वह पूरा करेगा। मेरे आसपास फैले हुए इस पागलपनके बीच उसका दिया हुआ वचन ही मुझे सहारा दिए हुए है।

नई दिल्ली, ९-९-'४७

: २३ :

सावधान!

अगर सरकारें और उनके दफ्तर सावधानी नहीं रखेंगे तो मुमकिन है कि अंग्रेजी जबान हिंदुस्तानीकी जगहको हड़प

ले। इससे हिंदुस्तानके उन करोडो लोगोंको बेहद नुकसान होगा, जो कभी भी अंग्रेजी समझ नही सकेंगे। मेरे खयालमे प्रातीय सरकारोके लिए यह बहुत आसान बात होनी चाहिए कि वे अपने यहां ऐसे कर्मचारी रखे, जो सारा काम प्रांतीय भाषाओ और अतर्प्रांतीय भाषामे कर सके। मेरी रायमे अतर्प्रातीय भाषा, सिर्फ नागरी या उर्दू लिपिमे लिखी जाने-वाली हिंदुस्तानी ही हो सकती है।

यह जरूरी फेरफार करनेमे एक दिन खोना भी देशको भारी सास्कृतिक नुकसान पहुचाना है। सबसे पहली और जरूरी चीज यह है कि हम अपनी उन प्रातीय भाषाओका सशो-धन करे जो हिंदुस्तानको वरदानकी तरह मिली हुई है। यह कहना दिमागी आलसके सिवा और कुछ नही है कि हमारी अदालतो, हमारे स्कूलो और यहातक कि हमारे दफ्तरोमे भी यह भाषा-सबधी फेरफार करनेके लिए कुछ वक्त, शायद कुछ बरस चाहिए। हा, जबतक प्रातोंका भाषाके आधारपर फिरसे बंटवारा नही होता तबतक बबई और मद्रास-जैसे प्रातोमे, जहां बहुत-सी भाषाए बोली जाती है, थोड़ी मुश्किल जरूर होगी। प्रातीय सरकारे ऐसा कोई तरीका खोज सकती है, जिससे उन प्रांतोके लोग वहां अपनापन अनुभव कर सके। जबतक हिंदुस्तानी-सघ इस सवालको हल न कर ले कि अत-र्प्रांतीय जबान नागरी या उर्दू लिपिमे लिखी जानेवाली हिंदु-स्तानी हो, या सिर्फ नागरी लिपिमे लिखी जानेवाली हिंदी, तबतकके लिए प्रातीय सरकारे ठहरी न रहे। इसकी वजहसे उन्हे जरूरी सुधार करनेमे देर न लगानी चाहिए। भाषाके

बारेमें यह एक बिलकुल गैरजरूरी विवाद खडा हो गया है, जिसकी वजहसे हिंदुस्तानमे अंग्रेजी-भाषा घुस सकती है। और अगर ऐसा हुआ तो इस देशके लिए यह एक ऐसे कलंककी बात होगी, जिसे धोना हमेशाके लिए असभव होगा। अगर सारे सरकारी दफ्तरोंमे प्रातीय भाषाके इस्तेमाल करनेका कदम इसी वक्त उठाया जाय तो अंतर्प्रांतीय जबानका उपयोग तो उसके बाद तुरंत ही होने लगेगा। प्रांतोंको केंद्रसे सबंध रखना ही पड़ेगा और अगर केंद्रीय सरकारने शीघ्र ही यह महसूस करनेकी समझदारी की कि उन मुट्ठीभर हिंदुस्तानियोंके लिए, हिंदुस्तानकी संस्कृतिको नुकसान नही पहुचाना चाहिए, जो इतने आलसी है कि जिस जबानको, किसी भी पार्टीका दिल दुखाए बगैर सारे हिंदुस्तानमे आसानीसे अपनाया जा सकता है, उसे भी नही सीख सकते। तो ऐसी हालतमे प्रांतीय सरकारें केंद्रीय सरकारसे अंग्रेजीमे अपना व्यवहार रखनेका साहस नही कर सकेंगी। मेरा मतलब यह है कि जिस तरह हमारी आजादीको जबरदस्ती छीननेवाले अंग्रेजोंकी राजनैतिक हुकूमतको हमने सफलतापूर्वक इस देशसे निकाल दिया, उसी तरह हमारी सस्कृतिको दबानेवाली अंग्रेजी जबानको भी हमें यहासे निकाल बाहर करना चाहिए। हा, व्यापार और राजनीतिकी अतर्राष्ट्रीय भाषाके नाते अंग्रेजीका अपना स्वाभाविक स्थान हमेशा कायम रहेगा।

नई दिल्ली, ११-९-'४७

: २४ :

शरणार्थी-कैंपमें सफाई

आज राजकुमारी अमृतकौर और डा० सुशीला नैयर मुझे अर्विन अस्पतालमे ले गई थी। वहांपर जात वगैरहका कोई भेदभाव रखे बगैर सिर्फ जख्मी लोगोका ही इलाज किया जाता है। मरीजोमे एक बच्चा था, जिसकी उमर मुश्किलसे पांच बरसकी होगी। गोली लगनेसे उसके बदनपर घाव हो गया था। डाक्टर और नर्सोंपर कामका भारी बोझ था, वहा मुसलमान मरीजोकी तादाद ज्यादा थी, क्योकि हिंदू और सिक्ख मरीजोंको दूसरे अस्पतालोंमे भेज दिया गया था।

राजकुमारीसे मुझे पता चला कि शरणार्थी कैंपोमे पाखाने साफ करनेके लिए भंगी भेजना करीब-करीब नामुमकिन है। इससे हैजे-जैसी छूतकी बीमारीके फैलनेका डर है। मेरी रायमे शरणार्थियोंको अपने-अपने कैंपोमें खुद सफाई करनी चाहिए। पाखाने भी उन्हे ही साफ करने चाहिए और कैंप-व्यवस्थापककी स्वीकृतिसे कुछ उपयोगी काम करना चाहिए। सिर्फ उन लोगोको छोड़कर, जो शारीरिक मेहनत नही कर सकते, बाकी सबपर यह नियम लागू होता है। सारे शरणार्थी-कैंप सफाई, सादगी और मेहनतके नमूने होने चाहिए।

आज पाकिस्तानके हाई कमिश्नर मुझसे मिलने आए थे। उनका सांप्रदायिक शाति और दोस्तीमें पक्का विश्वास है।

सिक्ख भाई आज मुझसे दो बार मिले। भारत-सरकारके कृपाण-संबंधी हुक्मसे वे दुःखी थे। मैं इसके बारेमें सरकारसे चर्चा करूं, उससे पहले उन्होंने कृपाणकी अपनी जरूरतके बारेमें मुझे लिखकर देनेका वचन दिया है। उन्होंने आगे कहा कि उनके खिलाफ लगाए गए इलजामोंको बहुत नमक-मिर्च लगाकर कहा गया है। हिंदुस्तानी संघमें रहनेवाले मुसलमानोंसे या किसी दूसरी जातसे हमारा कोई झगड़ा नहीं हो सकता। हम तो देशमें कानूनको माननेवाले नागरिक बनकर ही रहना चाहते हैं।

नई दिल्ली, ११-९-'४७

: २५ :

मेरी मूर्ति !

बंबईमें किसी आम जगहपर दस लाख रुपए खर्च करके मेरी मूर्ति खड़ी करनेकी बात चल रही है। इस संबंधमें मेरे पास कई आलोचनाभरे पत्र आए हैं। उनमेंसे कुछ तो नम्र हैं और कुछ इतने गुस्सेभरे हैं मानों मैं ही अपनी मूर्ति बनवाकर खड़ी करनेका गुनाह कर रहा होऊं! राईका पर्वत बना देना शायद इन्सानका स्वभाव है। असल बातकी छानबीन तो सिर्फ समझदार लोग ही करते हैं। इस मामलेमें आलोचनाके लिए जगह है। मुझे कहना होगा कि मुझे तो मेरा फोटो भी पसंद नहीं। कोई मेरा फोटो खींचता है तो मुझे

अच्छा नही लगता। फिर भी कोई-कोई खीच ही लेते है। मेरी मूर्तिया भी बनी है। इसके बावजूद अगर कोई पैसे खर्च करके मेरी मूर्ति खड़ी करनेकी बात करता है तो यह मुझे अच्छा नही लग सकता और खास करके इस वक्त, जब कि लोगोको खानेको अनाज नही मिलता, पहननेको कपडे नही मिलते। हमारे घरोमे, गलियोमे गदगी है, चालोमे (वस्तियोंमें) इन्सान किसी तरह जिदगी बिता रहे है तब शहरोको कैसे सजाया जा सकता है? इसलिए मेरी सच्ची मूर्ति तो मुझे रुचनेवाले काम करनेमे है। अगर ये रुपए, ऊपर बताए हुए कामोमे खर्च किए जाय, तो जनताकी सेवा हो और खर्च किए हुए रुपयोका पूरा बदला मिले। मुझे उम्मीद है कि यह पैसा इससे ज्यादा लोक-सेवाके कामोमे खर्च किया जायगा। कल्पना कीजिए कि इतने रुपए अगर अधिक अनाज पैदा करनेमे लगाए जाय तो कितने भूखोका पेट भरे।

नई दिल्ली, १३-९-'४७

: २६ :

राष्ट्रीय सेवक-संघके सदस्योंसे

दिल्लीमे आते ही मैंने सघके मुख्य कार्यकर्ताओसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की थी। सघके विरुद्ध मेरे पास काफी शिकायते यहां और कलकत्तामे आई थी। सघके साथ मेरा बरसोसे संबंध है। स्व० श्रीजमनालालजी बरसो पहले मुझे वर्धामे

सघके एक कैपमें ले गए थे। उस कैपको देखकर मै बहुत खुश हुआ था। वहा कडा अनुशासन था। सादगी थी और सवर्ण व असवर्ण सब समान थे। सघको चलानेवाले श्रीहेडगेवारजी वहुत बडे सेवक थे और सेवाके लिए ही जीते थे। वे तो चले गए, लेकिन सघकी ताकत दिन-प्रतिदिन बढती गई। मै तो हमेशासे यह मानता आया हूं कि जिस संस्थामे सच्चा त्यागभाव रहता है, उसकी ताकत बढती ही है। अगर त्यागभावके साथ शुद्ध भावना भी रहे तो वह सस्था जगतके लिए फायदेमद होती है। शुद्धता न हो तो सिर्फ त्यागसे जगतको फायदा नही पहुचता। शुद्ध त्यागके साथ शुद्ध ज्ञान और शुद्ध भावना न हो तो काम पूरा नही होता, गिरावट आ जाती है।

आप लोगोसे भी मैं अपरिचित नही हू। मैं तो इसी वाल्मीकि-बस्तीमे रहता और हमेशा देखा करता था कि आप किस नियम और किस ध्यानसे अपनी प्रार्थना और व्यायाम किया करते थे। आपकी प्रार्थनामे हिंद माताके और हिंदू-धर्मके गौरवकी बात है। मै तो दक्षिण अफ्रीकासे यह दावा करता आया हूं कि मै सनातनी हिंदू हूं। मै 'सनातन' का मूल अर्थ लेता हू। हिंदू शब्दका सच्चा मूल क्या है, यह बहुत कम लोग जानते है। यह नाम हमे दूसरोंने दिया और हमने उसे अपना लिया। धर्मके कई अभ्यासी कहते है कि हिंदू-धर्म क्यो कहते हो? इसे आर्य-धर्म कहो या सनातन धर्म कहो। हिंदू-धर्मकी विशेषता रही है, उसकी सहिष्णुता और जिसके सपर्कमे आए उसकी अच्छी चीजोको पचा लेनेकी ताकत।

आपके गुरुजीसे यहां मेरी मुलाकात हुई। उन्होने कहा—

"हमारे संघमे गदगी हो नही सकती। हम हिंदू-धर्मकी उन्नति चाहते है, पर किसीको नुकसान पहुंचाकर नहीं। स्वरक्षाके लिए हम हमेशा तैयार रहते हैं। संघमें सब भले ही है, ऐसा दावा हम नहीं कर सकते। लेकिन हमारी नीति क्या है, यह मैंने आपको सुना दिया।" मैंने आपके गुरुजीसे कहा कि अगर यह सही है तो मै डंकेकी चोट दुनियाको यह सुना सकता हूं कि आप लोग भले है। आपके गुरुजीने यह भी कहा कि बुरे काम करनेवालों, दंभियों और हुकूमतको गिरानेकी चेष्टा करनेवालोंके साथ संघका संबंध नही है। मैंने कहा कि हुकूमत किसकी मिटावेगे? हुकूमत तो हमारी अपनी है। हिंद यूनियनमे ज्यादा संख्या हिदुओंकी है। इसमें कोई शर्मकी बात नही। लेकिन अगर हम यह कहे कि यहां हिदुओके सिवा दूसरा कोई रह ही नही सकता और कोई रहे भी तो उसे हिंदुओंका गुलाम बनकर रहना होगा, तो यह गलत बात है। हिंदू-धर्म ऐसा नही सिखाता। मेरे हिंदू-धर्ममे सब धर्म आ जाते है। सब धर्मोका निचोड़ हिंदू-धर्ममे मिलता है। अगर हिंदू-धर्म सबको हजम करनेका काम न करता तो वह इतना ऊंचा न उठ सकता। सब धर्मोमे उतार-चढ़ाव तो आता ही है। जबसे हिंदू-धर्ममे अस्पृश्यताको स्थान मिला तबसे हम गिरने लगे। इससे हमे कितना नुकसान हुआ, उसे मै यहां नही बताऊंगा। अगर अस्पृश्यता या छूआछूतका मैल बना रहा तो हमारे धर्मका नाश हो जायगा। इसी तरहसे अगर हम कहे कि हिंदुस्तानमे सिवा हिंदुओके सबको गुलाम होकर रहना है, या पाकिस्तानवाले यह कहे

कि पाकिस्तानमें सिवा मुसलमानोंके सबको गुलाम बनकर रहना है तो यह चीज चलेगी नही। ऐसा कहकर दोनों अपना धर्म छोड़ते है और दोनों अपने-अपने धर्मका नाश करते हैं।

मुल्कके टुकडे तो हो चुके। सबने यह मंजूर किया, तभी तो ऐसा हुआ। अब उसे दुरुस्त करनेका तरीका क्या है ? एक हिस्सा गंदा बने तो क्या दूसरा भी वैसा ही करे ? बुराईका सामना बुराई द्वारा करनेसे, फिर वह समान मात्रामें हो, या ज्यादा या कम मात्रामे, बुराई मिटती नही। बुराईके सामने भलाई करनेसे ही बुराई मिटती है। मै तो जो मेरे दिलमे है, वही बात कह सकता हूं।

आज हिंदुस्तानकी नाव बड़े तूफानमेंसे गुजर रही है। हमारे जो नेता हुकूमतकी बागडोर लेकर बैठे है, उनसे बढ़कर हमारे पास कोई नही है। अगर कोई हो तो लाइए। मैं सिफारिश करूंगा कि हुकूमतकी बागडोर उनके हाथमे दे दी जाय। आखिर सरदार तो बूढे हो गए हैं। जवाहरलालजी बूढ़े नही है, लेकिन बूढ़े-से दीखने लगे है। वे दोनों हिम्मतके पुतले हैं। भय-जैसी उनके पास कोई चीज नही है। वे यथाशक्ति मुल्ककी सेवा कर रहे है।

अगर हिंदुस्तानके सब हिंदू एक दिशामें जाना चाहें, चाहे वह गलत ही क्यों न हो, तो उन्हें कोई रोक नहीं सकता। लेकिन कोई भी आदमी, फिर वह अकेला ही क्यों न हो, उनके खिलाफ अपनी आवाज उठा सकता है। उन्हे चेतावनी दे सकता है। वही मै आज कर रहा हूं।

आपका फर्ज है कि आप मन, वचन और कर्मसे अपनी

सरकारको मदद दे। अगर मैं कोई बुरी बात कहता होऊं तो मुझे बताइए। मुझसे कहा जाता है कि आप मुसलमानोंके दोस्त है और हिंदू व सिक्खोंके दुश्मन। मुसलमानोंका दोस्त तो मैं १२ बरसकी उम्रसे रहा हूं और आज भी हूं; लेकिन जो मुझे हिंदुओं और सिक्खोंका दुश्मन कहते हैं, वे मुझे पहचानते नही। मेरी रग-रगमे हिंदू-धर्म समाया हुआ है। मैं धर्मको जिस तरह समझता हूं, उसी तरह उसकी और हिंदुस्तानकी सेवा पूरी ताकतसे कर रहा हूं। मेरे दिलकी बात मैंने आपको सुना दी है। हिंदुस्तानकी रक्षाका, उसकी उन्नतिका यह रास्ता नही कि जो बुराई पाकिस्तानमे हुई उसका हम अनुकरण करे। अनुकरण हम सिर्फ भलाईका ही करें।

अगर पाकिस्तान बुराई ही करता रहा तो आखिर हिंदुस्तान और पाकिस्तानमे लड़ाई होनी ही है। मेरी बात कोई सुने तो यह सकट टल सकता है। अगर मेरी चले तो न तो मै फौज रखू और न पुलिस। मगर ये सब हवाई बाते है। मै हुकूमत नही चलाता। आज जो चल रहा है, उसमे तो लड़ाईका ही सामान भरा है। क्यों पाकिस्तानसे हिंदू और सिक्ख भाग रहे है? पाकिस्तानवाले उन्हें क्यों नही मनाते कि यही रहो। अपना घर न छोड़ो। आपकी इज्जत और जान-मालकी हम हिफाजत करेंगे? क्यों पाकिस्तानमे एक छोटी-सी लड़कीकी तरफ भी कोई बदनजरसे देखे? इसी तरह क्यों न एक-एक मुसलमान हिंद-यूनियनमे पूरी तरह सुरक्षित रहे?

आपकी संख्या बड़ी है। आपकी ताकत हिंदुस्तानकी बरबादीमे लगे तो वह बुरी बात होगी। आपपर जो इलजाम

लगाया जाता है, उसमें कुछ भी सच है या नही, यह मैं नही जानता। मैंने तो सिर्फ बता दिया कि किसी चीजका नतीजा क्या हो सकता है। यह संघका काम है कि वह अपने सही कामोसे इस इलजामको झूठ साबित कर दे।

सवाल—हिंदू-धर्ममें पापीको मारनेकी इजाजत है या नहीं ?

जवाब—है भी और नही भी है। जो खुद पापी है, वह दूसरे पापीको सजा कैसे देगा? अगर सब निर्णायक बन जायं तो न्याय किसको मिलेगा? पापीको सजा देना हुकूमतका काम है। आप हुकूमतसे कह दे कि यह आदमी पापी है, दगाबाज है। इसको सजा दीजिए। हुकूमत तो अहिंसा माननेवाली है नही। वह दगाबाजोको गोलीसे उड़ा देगी। मगर यह कह देना कि सारे मुसलमान दगाबाज है, ठीक नही है, यह हिंदू-धर्म नही है।[1]

नई दिल्ली, १६–९–'४७

: २७ :

भारतीय संघके मुसलमानोंसे

कुछ मुसलमान दोस्तोंने गांधीजीसे कहा कि वे दिल्ली शहरके मुस्लिम मोहल्लोंमें जायं, ताकि जो मुसलमान अभी वहां रह रहे है, वे

---

[1] भंगी बस्ती (नई दिल्ली) में राष्ट्रीय स्वयं-सेवक-संघके स्वयं-सेवकोके समक्ष दिया गया भाषण।

डरकर अपने मकान खाली न कर दें। गांधीजी एकदम राजी हो गए और उन्होंने शामको दरियागंज मुहल्लेसे अपना यह काम शुरू किया। मकानों और दूकानोकी उजाड़ शक्ल देखकर गांधीजोको दुःख हुआ। इनमेंसे कुछ दूकानें लूट ली गई थी। करीब सौ मुसलमान आसफअली साहबके मकानमें इकट्ठा हो गए थे। उन्होंने गांधीजीसे कहा कि हम हिंदुस्तानमें यूनियनके वफादार नागरिक बनकर रहना चाहते हैं, मगर हम खास तौरपर पुलिसके पक्षपाती बर्तावसे अपनी हिफाजतकी गारंटी चाहते हैं। अपनी हालतका बयान करते हुए कुछ लोगोंकी आंखोंमें आंसू आ गए थे। उन्होंने कहा कि पाकिस्तानके मुसलमानोंने जो कुछ किया उसकी हम ताईद नहीं करते, मगर उनके पापोंका बदला बेगुनाहोंसे नहीं लिया जाना चाहिए। उनके सामने बोलते हुए गांधीजीने कहा—

आप लोग बहादुर बनिए और मजबूतीके साथ कहिए कि चाहे जो हो, हम अपने मकान नही छोडेंगे। आपको अपनी हिफाजतके लिए एक भगवानको छोड़कर और किसीपर मुनहसिर नही रहना चाहिए। मै अपनी ताकतभर सब कुछ करनेके लिए यहांपर ठहरा हुआ हूं। मैने नोआखाली, बिहार कलकत्ता और अब दिल्लीमे अपने आपको 'करने या मरने' के दांवपर लगा दिया है। जबतक सच्ची शांति कायम न हो और हिंदू, सिक्ख और मुसलमान, पुलिस और फौजकी मददके बगैर आपसमे भाई-भाईकी तरह रहना तय न कर लें तबतक जो लोग अपने-अपने घर छोड़कर चले गए है, उनसे मै वापिस आनेके लिए नही कहूंगा।

मै जिस तरह हिंदुओ और दूसरोका दोस्त और सेवक हूं उसी तरह मुसलमानोंका भी हूं। मै तबतक चैन नहीं लूगा जबतक हिंद-यूनियनका हर एक मुसलमान, जो यूनियनका

वफादार नागरिक बनकर रहना चाहता है, अपने घर वापिस आकर शाति और हिफाजतसे नही रहने लगता और इसी तरह हिंदू और सिक्ख भी अपने-अपने घरोको नही लौटते। मैने दक्षिण अफ्रीका और हिंदुस्तानमे जिंदगीभर मुसलमानोंकी सेवा की है। मै खिलाफतके दिनोकी हिंदू-मुस्लिम-एकताको भूल नही सकता। वह एकता टिकी नही, मगर उसने यह दिखा दिया कि हिंदुओं और मुसलमानोंमे टिकाऊ दोस्ती कायम हो सकती है। इसीके लिए मै जीता हू और काम करता हूं। मै यह देखनेके लिए पजाब जा रहा था कि जो हिंदू और सिक्ख पाकिस्तानसे खदेड़ दिए गए है, वे अपने-अपने घरोंको वापिस लौट सके और वहा हिफाजत और इज्जतसे रह सकें। मगर रास्तेमें मै दिल्लीमे रोक लिया गया और जबतक हिंदुस्तानकी इस राजधानीमे शांति कायम नही होती तबतक मै यही रहूंगा। मै मुसलमानोको यह सलाह कभी नही दूगा कि वे लोग अपने घर छोड़कर चले जाय, भले ही ऐसी बात कहनेवाला मै अकेला ही क्यो न होऊं। अगर मुसलमान लोग हिंदुस्तानके कानून माननेवाले और वफादार नागरिक बनकर रहे तो उन्हे कोई भी नही छू सकता। मै सरकार नही हूं, मगर जो सरकारमे है, उनपर मेरा असर है। मैनें उन लोगोसे इस विषयपर लंबी चर्चाए की है। वे इस बातको नही मानते कि हिंदुस्तानमे मुसलमानोके लिए कोई जगह नही है, या अगर मुसलमान यहा रहना चाहे, तो उन्हे हिंदुओका गुलाम रहकर रहना पड़ेगा। कुछ लोगोने कहा है कि सरदार पटेलने मुसलमानोके पाकिस्तानमे जानेकी

बातकी ताईद की है। जब सरदारसे मैंने यह बात कही तो वे गुस्सा हुए। मगर साथ ही उन्होंने मुझसे कहा कि इस शकके लिए मेरे पास कारण हैं कि हिंदुस्तानके मुसलमानोंकी बहुत बड़ी तादाद हिंदुस्तानके प्रति वफादार नही है। ऐसे लोगोका पाकिस्तानमे चले जाना ही ठीक होगा। मगर अपने इस शकका असर सरदारने अपने कामोंपर नही पड़ने दिया। मैं पूरी तौरपर मानता हूं कि जो मुसलमान यूनियनके नागरिक बनना चाहते है, उन्हे सबसे पहले यूनियनके प्रति वफादार होना ही चाहिए और उन्हे अपने देशके लिए सारी दुनियासे लडनेके लिए तैयार रहना चाहिए। जो लोग पाकिस्तान जाना चाहते है, वे ऐसा करनेके लिए आजाद हैं। मैं सिर्फ यही चाहता हूं कि एक भी मुसलमान, हिदुओं या सिक्खोंके डरसे यूनियन न छोड़े। दिल्लीके मुसलमानोंने अपने लिखित ऐलानके जरिए मुझे भरोसा दिलाया है कि वे हिंदुस्तानी संघके वफादार नागरिक है। जिस तरह मैं दूसरोंसे उम्मीद करता हूं कि वे मेरी बातोंपर भरोसा करे, उसी तरह मैं भी उनकी बातोंपर भरोसा करूंगा। ऐसी हालतमे सरकारका फर्ज है कि वह इन लोगोंकी हिफाजत करे। अगर मुझे मुसलमानोको हिफाजतसे रखनेमे कामयाबी, न मिली, तो कम-से-कम मै जिदा नही रहना चाहूगा। बुराई जहां कही भी हो, उसे तो खत्म करना ही होगा। भगाई हुई औरतों-को लौटाया जाय और जबरदस्ती धर्म बदलनेके मामलोंको रद समझा जाय। पाकिस्तानके हिंदू और सिक्ख और पूर्वी पंजावके मुसलमान फिरसे अपने-अपने घरोंमें बसाए जायं।

पाकिस्तान और यूनियनमें वे ऐसी हालत पैदा करें कि एक छोटी लड़की भी अपने आपको असुरक्षित न समझे, फिर उसका चाहे जो मजहब हो। खलिकुज्जमा साहब और मुजफ्फर नगरके मुसलमानोंके बयान पढ़कर मुझे खुशी हुई है। मगर पाकिस्तान रवाना होनेसे पहले मुझे दिल्लीकी आग बुझानेमें मदद करनी ही होगी। अगर हिंदुस्तान और पाकिस्तान हमेशाके लिए एक दूसरेके दुश्मन बन जायं और आपसमें जंग छेड़ दें, तो ये दोनों ही उपनिवेश नष्ट हो जायंगे और बड़ी मुश्किलोंसे हासिल की हुई अपनी आजादीको बहुत जल्दी खो देंगे। वह दिन देखनेके लिए मैं जिंदा नहीं रहना चाहता। मौलाना अहमद सईदने मुसलमानोंसे अपील की है कि वे अपने बगैर लाइसेंसके हथियार सरकारको सौंप दें।

दरियागंज छोड़नेसे पहले लोग गांधीजीको कुछ पर्दानशीन औरतोंके पास ले गए। उन औरतोंने कहा कि हमारी सारी उम्मीदें आपपर लगी हुई हैं। गांधीजीने उन्हें जवाब दिया :

आपको एक खुदाको छोड़कर और किसीपर मुनहसिर नहीं रहना चाहिए। अपनी ओरसे मैं भरसक कोशिश कर रहा हूं।

दरियागंज-मस्जिद दिल्ली, १९-९-'४७

: २८ :

मेरा धर्म

यह शीर्षक सिर्फ इस बातपर विचार करनेके लिए है कि

'हरिजनसेवक' वगैरह अखबार चलाने न चलानेके बारेमें मेरा धर्म क्या है। मेरे सवालके जवाबमें पाठकोंकी तरफसे मेरे पास काफी तादादमें पत्र आए हैं। उनमेंसे ज्यादातर लोग चाहते हैं कि ये अखबार जारी रहें। इन लेखकोंका भाव यह है कि इस वक्त उन्हें अलग-अलग विषयोंपर मेरा मत जाननेकी इच्छा है। यानी मेरे मरनेपर इन अखबारोंकी जरूरत रहेगी या नहीं, यह एक सवाल है।

मेरी मौत तीन तरहसे हो सकती है :

१. यह शरीर छूट जाय।
२. आंखकी पुतली अपना काम करती रहे, मगर शरीर या मन किसी कामके न रहें।
३. यह शरीर टिका रहे, मन और बुद्धि भी काम देते रहें, मगर मैं जनसेवाके सारे क्षेत्रोंसे हट जाऊं।

पहले प्रकारकी मौत तो हर देहधारीके लिए है—कोई आज मरता है तो कोई कल। इसलिए इसके बारेमें क्या कहा जा सकता है?

दूसरे प्रकारकी मौत तो किसीको न मिले! ऐसी जिंदगी धरतीपर बोझकी तरह है। ऐसा होता हो या न होता हो, मगर अपने लिए तो मैं ऐसी मौत नहीं चाहता।

अब विचारने लायक तीसरी मौत ही रह जाती है। कई पाठक मानते हैं कि मेरा प्रवृत्तिकाल अब बीता हुआ समझना चाहिए। पंद्रहवीं अगस्तके बादसे नया युग शुरू हुआ है। उसमें मेरी जगह कहीं भी नहीं है। इस कथनमें मुझे गुस्सा

नजर आता है, इसलिए इसका मुझपर कोई असर नहीं। ऐसी सलाह देनेवाले बहुत थोड़े हैं।

इसलिए मुझे इस सवालपर स्वतंत्र विचार करनेकी जरूरत है। 'हरिजन' अखबार नवजीवन ट्रस्टकी देखरेखमें निकलते हैं। ट्रस्टी-मंडल चाहे तो इन अखबारोंको आज बंद कर सकता है। उसे पूरा अधिकार है। मगर वे नहीं चाहते कि ये बंद हों। मेरा जीवन लोकसेवाके काममें ही बीत रहा है। अकर्ममें भी कर्म देखनेकी शक्ति अभी मुझमें नहीं है। इसलिए जबतक सांस चलती है तबतक तो मेरे काम जारी रहेंगे। मेरी प्रवृत्तियों-को अलग-अलग हिस्सोंमे बांटा नही जा सकता। सबका मूल एक ही है, फिर उसे सत्य कहो या अहिंसा। इसलिए ये अखबार जैसे चल रहे हैं, वैसे ही चलते रहेंगे। "मेरे लिए एक कदम काफी है।"[1]

नई दिल्ली, २२-९-'४७

: २६ :

उपवासका अर्थ

एक भाई लिखते हैं—

"मुझे लगता है कि हर कदमपर अपने प्राणोंकी बाजी लगा देना

---

[1] मूल-गुजरातीमें इस वाक्यके लिए यह चरण है—"मारे एक डगलुं बस थाय।"

आपके लिए आखिरी और कुदरती इलाज भले हो, मगर उसका उपयोग मरीजको इंजेक्शन देकर या उसमें प्राणवायु भरकर उसे जिंदा रखनेकी कोशिश करने-जैसा ही है।"

ये शब्द प्यारसे और दुखसे लिखे गए है। फिर भी मुझे कहना पड़ेगा कि लेखकने इस विषयपर पूरा विचार नही किया। मेरा भला चाहनेवाले दूसरे बहुतसे भाइयोका भी शायद यही विचार हो, यह समझकर मैं खुले तौरपर इसका जवाब देता हूं।

खत लिखनेवाले भाईकी उपमा यहां लागू नही होती। प्राणवायु भरने और सुई लगानेका इलाज सिर्फ बाहरी इलाज है। और उसका प्रयोग शरीरपर, उसे कुछ ज्यादा समयतक टिकाए रखनेके लिए ही होता है। इसलिए वह क्षणिक है। वास्तवमे देखा जाय तो इस इलाजके न करनेमे इन्सान कुछ खोता नही है। शरीरको अमर तो किया ही नही जा सकता। उसकी उमर दो दिन बढ़ा देनेसे कोई बड़ा फायदा नहीं होता।

उपवास किसीके शरीरपर असर डालनेके लिए नही किया जाता। वह तो दिलको छूता है। इसलिए उसका संबंध आत्मासे है। इससे उपवासका असर क्षणिक नही होता। वह टिकाऊ होता है। उपवास करनेवालेमे इसके लिए नैतिक योग्यता है या नही, यह जुदी बात है। यहां हमे इसपर विचार नही करना है।

अपने जितने उपवासोंकी मुझे याद है, उनमेसे एक ही ऐसा था, जिसमे उपवास करनेमे तो मैंने भूल नही की थी,

मगर उसमें मैंने बाहरी इलाज मिला दिया था, जो उपवासका विरोधी है। यह भूल न हुई होती तो मुझे यकीन है कि उसका नतीजा अच्छा ही निकलता। मेरा मतलब उस उपवाससे है, जो मैंने राजकोटके स्वर्गीय ठाकुर साहबके विरोधमें किया था। मैं संभल गया, इसलिए अपनी भूल सुधार सका और एक भयंकर नतीजा टल गया।

मेरा आखिरी उपवास कलकत्तामें २-३-४ सितंबरको हुआ था। उसका बहुत अच्छा नतीजा निकला। उसका संबंध आत्मासे होनेकी वजहसे मैं उसे टिकाऊ मानता हूं। मगर यह असर टिकाऊ हुआ या नहीं, यह तो समय ही बतलाएगा। यह बात उपवास करनेवालेकी पवित्रतापर और उसके ज्ञानपर निर्भर है। इसकी जांच करना यहां अप्रासंगिक होगा। यह जांच मैं खुद कर भी नहीं सकता। कोई निष्पक्ष और योग्य आदमी ही कर सकता है और वह भी मेरे मरनेके बाद।

नई दिल्ली, २५-९-'४७

: ३० :

हिंदुस्तानी

काकासाहब कालेलकर एक खतमें लिखते हैं—

"यूनियनके मुसलमान यूनियनके वफादार रहेंगे तो क्या वे हिंदुस्तानी भाषाको राष्ट्रभाषा मानेंगे और हिंदी-उर्दू दोनों लिपियां सीखेंगे?

इस बारेमें अगर आप अपनी राय नहीं बतावेंगे तो हिंदुस्तानी प्रचारका काम बहुत मुश्किल हो जायगा। मौलाना आजाद क्या अपने खयालात नहीं बता सकते ?"

काकासाहब जो कहना चाहते है वह नई बात नही है। लेकिन आजाद हिंदमे यह बात यूनियनको ज्यादा जोरोसे लागू होती है। अगर यूनियनके मुसलमान हिंदुस्तानकी तरफ वफादारी रखते है और हिंदुस्तानमे खुशीसे रहना चाहते हैं तो उनको दोनों लिपियां सीखनी चाहिए।

हिंदुओकी तरफसे कहा जाता है कि उनके लिए पाकिस्तान-मे जगह नही, सिर्फ हिंदुस्तानमे है। अगर कही ऐसा मौका आवे कि पाकिस्तान और हिंदुस्तानके बीच लड़ाई छिड़ जाय तो हिंदुस्तानके मुसलमानोंको पाकिस्तानसे लड़ना होगा। यह ठीक है कि लडाईका मौका आना ही नही चाहिए। आखिरमे दोनों हुकूमतोंको एक-दूसरीसे मिल-जुलकर काम करना होगा। एक-दूसरीके प्रति दोस्ती होनी चाहिए। दो हकूमते होते हुए भी काफी चीजे दोनोके बीच एक ही है। अगर वे दुश्मन बन जायं तब तो कोई भी चीज एक नही हो सकती। दोनोंमे दिलकी दोस्ती रहे तब तो प्रजा दोनोकी तरफ वफादार रह सकती है। यों तो दोनों राज एक ही संस्थाके सदस्य है। उनमें दुश्मनी हो ही कैसे सकती है? लेकिन इस चर्चामें पड़नेकी यहां कोई जरूरत नही।

हिंदुस्तानमे सबकी बोली एक ही हो सकती है। मै तो एक कदम आगे बढकर कहता हूं कि अगर दोनों राज एक-दूसरेके दुश्मन नही, बल्कि दिलसे दोस्त बनते है तो दोनों तरफ

सब नागरी और उर्दू लिपिमें लिखेंगे। इसका मतलब यह नहीं कि उर्दू जबान या हिंदी जबान रह ही नहीं सकती; लेकिन अगर दोनोंको या सब धर्मियोंको दोस्त बनना है तो सबको हिंदी और उर्दूके संगमसे जो आम बोली बन सकती है, उसमें ही बोलना है। और, उसी बोलीको उर्दू या नागरी लिपिमें लिखना है। कम-से-कम हिंदुस्तानमें रहनेवाले मुसलमानोंका इम्तिहान तो इसमें हो जाता है और यही बात हिंदू, सिक्ख वगैरहको भी लागू होती है। लेकिन मैं ऐसा नही कहूंगा कि मुसलमान अगर दोनों लिपियां नही सीखते तो उर्दू और हिंदीके मेलसे बननेवाली सबकी बोली राष्ट्रभाषा हो ही नहीं सकती। मुसलमान दोनों लिपिया सीखें या न सीखें, तो भी हिंदू तथा हिंदुस्तानके दूसरे धर्मियोंको दोनों लिपियां सीखनी चाहिए। आजकी जहरीली हवामे यह सादी-सी बात भी शायद लोग नहीं समझ सकेंगे। उर्दू लिपिका और उर्दू लफ्जों-का हिंदू जान-बूझकर बहिष्कार करना चाहें तो कर तो सकते हैं, लेकिन उससे हम बहुत कुछ खोएंगे। इसलिए जिन लोगोने हिंदुस्तानी प्रचारका काम हाथमें लिया है, फिर वे दो-चार हों या करोड़ों, वे इस सीधी-सादी बातको छोड़ नही सकते।

मैं इसमें भी सहमत हूं कि मौलाना अबुलकलाम आजाद साहब और हिंदुस्तानके दूसरे ऐसे मुसलमानोंको ऐसी चीजोंमें नमूना बनना चाहिए। अगर वे न बनें तो कौन बनेगा? हमारे सामने बहुत मुश्किल वक्त आया है। ईश्वर हमको सन्मति दे!

नई दिल्ली, २७–९–'४७

: ३१ :

भयंकर उपमा

एक भाई, जिनके नामसे जान पड़ता है कि उनकी मातृ-भाषा हिंदी है, अंग्रेजीमे लिखे गए अपने खतमें मुझे इस तरह लिखते है—

"आपने जो लगातार इस तरहकी अपीलें की है कि मुसलमानोंको अपने भाई समझो और उनकी हिफाजतकी गारंटी दो, ताकि वे यहांसे पाकिस्तान न चले जाएं, उसके सिलसिलेमें मैं एक उदाहरण देता हूं—जाड़ेके दिनोंमें एक बार कोई आदमी कहीं जा रहा था। रास्तेमें उसे एक सांप पड़ा हुआ दिखाई दिया, जो ठंडसे ठिठुर गया था। उस आदमीको दया आई और सांपको गर्मी पहुंचानेके इरादेसे उसने उसे उठाकर अपनी जेबमें रख लिया। गर्मी मिलनेसे सांप सचेत हुआ और सबसे पहला काम जो उसने किया वह यह था कि उसने अपने रक्षकके ही शरीरमें अपने जहरीले दांत गड़ा दिए और उसे मार डाला।"

इन भाईने गुस्सेमे आकर इस भयंकर उपमाका उपयोग किया है। एक इन्सानको, चाहे वह कितनाही गिरा हुआ हो, जहरीले सांपकी उपमा देना और फिर उसके साथ वहशियाना बरताव करना वास्तवमें बुरी बात है। थोड़े या ज्यादा लोगोंकी गल्तियोंकी वजहसे उस धर्मके करोड़ो इन्सानोंको जहरीले सांप समझना मुझे हद दरजेका पागलपन जान पड़ता है। खत लिखनेवाले भाईको याद रखना चाहिए कि ऐसे पागल और कट्टर मुसलमान पड़े है, जो हिंदुओंके बारेमे यही उपमा

काममें लाते है। मै नही समझता 'कि कोई भी हिंदू सांप कहलाना पसद करेगा।

किसी आदमीको भाई समझनेका यह मतलब नही है कि जब वह दगाबाज साबित हो तब भी उसपर भरोसा किया जाय। और इस डरसे किसी आदमीको और उसके परिवारको मार डालना बुजदिलीकी निशानी है कि वह आदमी दगावाज सावित हो सकता है। जरा ऐसे समाजका चित्र अपने सामने खड़ा कीजिए, जिसमें हर आदमी अपने साथीका न्यायाधीश बनता है। मगर हिंदुस्तानके कुछ हिस्सोंमे हमारी ऐसी ही करुण स्थिति हो गई है।

आखिरमे मैं सांपोंकी जातिके साथ इन्साफ करनेके लिए लोगोंमें फैले हुए एक मामूली वहमको सुधार दू। जानकार लोग कहते हैं कि ८० फीसदी सांप पूरी तरह निर्दोष होते हैं और कुदरतके उपयोगी जीवोंमें उनकी गिनती की जा सकती है।

नई दिल्ली, ३-१०-'४७

: ३२ :

उदासीका कोई कारण नहीं

वरसगांठकी मुबारकवादीके अनेक तार मेरे पास आए हैं। उनमेंसे एकमें मुझे यह सलाह दी गई है—

"क्या मैं कहूं कि मौजूदा परिस्थितिमें आपको उदास नहीं होना

चाहिए? मुझे तो लगता है कि जो खून-खराबी आजकल हो रही है, वह ईश्वरी योजनाको हटानेके लिए बुरी ताकतोंकी आखिरी कोशिश है। दुनियामें जो विषम परिस्थिति बढ़ती और फैलती जा रही है उसे अहिंसाके द्वारा मिटानेमें हिंदुस्तानको ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा लेना है। ईश्वरी योजनाको पूरी करनेके लिए आज दुनियामें आप अकेले व्यक्ति हैं।"

यह तार मेरे प्रति प्रेमकी निशानी है, ज्ञानकी नही। आइए, हम इसकी छानबीन करे।

मेरी आजकी मानसिक स्थितिको उदासी कहना गलती है। मैने सिर्फ सचाईका बयान किया है। मुझमे ऐसा समझने-का झूठा अभिमान नही है कि ईश्वरी योजना सिर्फ मेरे ही द्वारा पूरी हो सकती है। मै ईश्वरके हाथमे, उसकी योजना पूरी करनेके लिए जितना योग्य हो सकता हू, उतना ही अयोग्य क्यों नही हो सकता? कमजोर प्रजाके प्रतिनिधिके रूपमे भगवानने मुझे साधन भले बनाया हो, मगर आजाद बनी हुई और ताकतवर प्रजाके प्रतिनिधिके रूपमे मै अयोग्य क्यों नही साबित हो सकता? मुमकिन है कि आखिरके बहुत बड़े कामके लिए मुझसे ज्यादा बलवान और ज्यादा दूरदर्शी कोई दूसरा आदमी उस ईश्वरके मनमे हो। मै जानता हूं कि ये सब महज कल्पनाए है। ईश्वरकी मर्जी पूरी तरहसे जाननेकी ताकत उसने किसीको नही दी। दयाके इस अपार सागरमे हम-सब बूंदके बराबर है। बूंद भला सागरको कैसे नाप सकती है?

बेशक, आदर्श तो यह होना चाहिए कि मै न तो एक सौ

पच्चीस बरस जीनेकी इच्छा रखूं और न आजकी विरोधी हालतोंको देखकर मरना चाहूं। अगर मैं आदर्शतक पहुंचा होऊं तो मेरी सारी इच्छाएं भगवानकी महान् इच्छामें समा जानी चाहिए। मगर आदर्श हमेशा आदर्श ही रहेगा। आदर्श जब सच्चा होता है तब वह आदर्श नहीं रह जाता। इसलिए इन्सान सिर्फ इतना ही कर सकता है कि वह आदर्शतक पहुंचनेमें अपनी कोई कोशिश बाकी न रखे। अपने बारेमे मैं इतना दावा कर सकता हूं कि मुझमें जितनी भी ताकत है, उसका पूरा उपयोग मैं आदर्शके नजदीक पहुंचनेमे कर रहा हूं।

अगर मैंने १२५ बरस जीनेकी अपनी इच्छाको खुले आम जाहिर करनेकी ढिठाई की थी तो इस विषम परिस्थितिमे उतने ही खुले तौरपर यह इच्छा बदलनेकी नम्रता मुझमें होनी ही चाहिए। मैंने इससे न कुछ ज्यादा किया, न कम। न इसके पीछे किसी किस्मकी उदासी ही थी। शायद 'लाचारी' शब्द मेरी हालतको ज्यादा सही रूपमे बयान कर सकता है। इस लाचारीकी हालतमें इस क्षणिक और दुःखी दुनियासे भगवान मुझे उठा ले, ऐसी पुकार मैं जरूर करता हूं। मैं उससे मांगता हूं कि जो पागलपन हम लोगोंमें इस समय फैल रहा है, उसका साक्षी मुझे न बनाए, फिर भले ही इस पागलपनसे भरा हुआ इन्सान अपनेको मुसलमान, हिंदू या दूसरा कोई भी धर्म माननेवाला कहनेकी ढिठाई क्यों न करता हो। फिर भी मेरी आखिरी प्रार्थना तो यही है और रहेगी, "हे नाथ! मेरी नहीं, बल्कि तेरी ही इच्छाका

साम्राज्य इस जगतमे फैले।" अगर भगवानको मेरी जरूरत होगी तो वह अभी कुछ समयतक और इस धरतीपर मुझे रखेगा।

नई दिल्ली, ५-१०-'४७

: ३३ :

एक विद्यार्थीकी उलझन

एक विद्यार्थीने अपने शिक्षकको एक खत लिखा था। उसका नीचेका हिस्सा शिक्षकने मेरी राय जाननेके लिए मेरे पास भेजा है। विद्यार्थीका खत अंग्रेजीमे है। उसकी मातृ-भाषा क्या होगी, यह मैं नही जानता।

"मुझे दो बातोंने घेर लिया है: एक तरफसे मेरे देश-प्रेमने और दूसरी तरफसे तेज विषय-वासनाने। इससे मुझमें विरोधी भावनाएं पैदा होती हैं और मेरे निर्णय घड़ी-घड़ी बदलते रहते हैं। मुझे अपने देशका अव्वल-दर्जेका सेवक बनना है। लेकिन साथ ही मुझे दुनियाका आनंद भी लूटना है। मुझे यह कबूल करना चाहिए कि ईश्वरमें मेरी श्रद्धा नहीं है, हालांकि कितनी ही बार मुझे ईश्वरका डर मालूम होता है। सच पूछा जाय तो सारा जीवन ही एक समस्या है। मैं क्या जानूं कि इस जीवनके बाद मेरा क्या होनेवाला है? मैंने बहुत-सी जलती चिताएं देखी हैं—आखिरी चिता मैंने अपनी मान ली है। जलती चिताके दृश्यने मुझपर भयंकर असर पैदा किया। क्या मेरे भी ऐसे ही हाल होंगे? यह विचार भी मैं सहन नहीं कर सकता। किसी घायलको देखता हूं तो मेरे सिरमें चक्कर आने लगता है। बादमें मेरी कल्पना काम करने लगती है और कहती

है कि तेरे शरीरका भी किसी दिन यही हाल होगा ! मैं जानता हूं कि किसी शरीरको इस हालतमेंसे मुक्ति नहीं मिलती। साथ ही, ऐसा लगता है कि मौतके बाद जीवन नहीं है और इसलिए मुझे मौतका डर लगता है।

"इस हालतमें मेरे पास सिर्फ दो ही रास्ते हैं, या तो मैं इस उलझनमें फँसकर जलता रहूं या दुनियाके भोग-विलासमें पड़कर दूसरी बातोंका ख्यालतक न करूं। दूसरे किसीके सामने मैंने यह बात कबूल नहीं की, लेकिन आपके सामने कबूल करता हूं कि मैंने तो दुनियाका आनंद लूटनेका रास्ता ही पकड़ा है।

"यह दुनिया ही सच्ची है और किसी भी कीमतपर उसके मजे लूटने ही है। मेरी पत्नी अभी-अभी मरी है। मेरे मनमें उसके लिए प्रेम था। लेकिन मैं देखता हूं कि उस प्रेमकी जड़में उसका मरना नहीं था, बल्कि मेरा यह स्वार्थ था कि उसके मरनेसे मैं अकेला रह गया। मरनेके बाद तो कोई गुत्थी सुलझानेको रहती नहीं और जिंदा आदमीके लिए तो सारी जिंदगी ही एक गुत्थी है। शुद्ध प्रेममें मेरी श्रद्धा नहीं है। जिसे प्रेमके नामसे पहचाना जाता है, वह प्रेम तो सिर्फ विषय-भोगका होता है। अगर शुद्ध प्रेम-जैसी कोई चीज होती तो अपनी पत्नीके बनिस्बत अपने मां-बापमें मेरा आकर्षण ज्यादा होना चाहिए था; लेकिन हालत तो इससे बिल्कुल उलटी थी। मां-बापके बनिस्बत पत्नीमें मेरा आकर्षण अधिक था। यह सच है कि मैं अपनी पत्नीके प्रति सच्चा था। लेकिन उसे मैं यह गारंटी नहीं दिला सकता था कि उसके मरनेके बाद भी उसकी तरफ मेरा प्रेम बना रहेगा। उसके मरनेके बाद मुझे जो दुःख होगा, वह तो उसके न रहनेसे पैदा होनेवाली मुसीबतोंका दुःख होगा। आप इसे एक तरहकी बेरहमी कह सकते हैं। जो हो, लेकिन सच्ची हालत यही है। अब मेहरबानी करके मुझे लिखिए और रास्ता बताइए।"

खतके इस हिस्सेमे तीन बाते आती है। एक, विषय-वासना और देश-प्रेमके बीच खडा होनेवाला विरोध, दूसरी, ईश्वरमें और मरनेके बादके भविष्यमे अश्रद्धा, और तीसरी, शुद्ध प्रेम और विषय-वासनाका द्वंद्व-युद्ध।

पहली उलझन ठीक ढगसे रखी मालूम होती है। उसका सार यह है कि विषय-भोगकी इच्छा सच्ची बात है और देश-प्रेम बहते प्रवाहमे खिच जानेके समान है। यहा देश-प्रेमका अर्थ होगा सत्ता पानेके प्रपचमे पडना, ताकि उसके साथ विषय-वासना पूरी करनेका मेल बैठ सके। इस तरहके बहुतसे उदाहरण मिल सकते है। देश-प्रेमका मेरा अर्थ यह है कि प्रजाके गरीब लोगोके लिए भी हमारे दिलमे प्रेमकी आग जलती हो। यह आग विषय-वासना-जैसी चीजको हमेशा जला डालती है। इसलिए मै देश-प्रेम और विषय-वासनाके बीचमे कोई झगडा देखता ही नही। उलटे, यह प्रेम हमेशा विषय-वासनाको जीत लेता है। ऐसे विश्व-प्रेमको जो वृत्ति तोड सके, उसे पोसनेका समय भी कहां बच सकता है? इसके खिलाफ जिस आदमीको विषय-वासनाने अपने वशमे कर लिया है, उसका तो नाश ही होता है।

ईश्वरके बारेमे और मरनेके बादके भविष्यके बारेमें अश्रद्धा भी ऊपरकी वासनामेसे ही पैदा होती है, क्योकि यह वासना औरत और मर्दको जडसे हिला देती है। अनिश्चय उन्हे खा जाता है। विषय-वासनाके नाश हो जानेपर ही ईश्वरपर रहनेवाली श्रद्धा जीती है। दोनो चीजे साथ-साथ नही रह सकती।

तीसरी उलझनमे पहलीको ही दुहराया गया मालूम होता है। पति और पत्नीके बीच शुद्ध प्रेम हो तो वह दूसरे सब प्रेमोंकी अपेक्षा आदमीको ईश्वरके ज्यादा पास ले जाता है। लेकिन जब पति-पत्नीके बीचके प्रेममें विषय-वासना मिल जाती है तब वह मनुष्यको अपने भगवानसे दूर ले जाती है। इसमेसे एक सवाल पैदा होता है : अगर औरत और मर्दका भेद पैदा न हो, विषय-भोगकी इच्छा मर जाय, तो शादीकी जरूरत ही क्या रह जाय ?

अपने खतमें विद्यार्थीने ठीक ही कबूल किया है कि अपनी पत्नीकी तरफ उसका स्वार्थभरा प्रेम था। जो वह प्रेम निःस्वार्थ होता तो अपनी जीवन-संगिनीके मरनेके बाद विद्यार्थीका जीवन ज्यादा ऊचा उठता, क्योंकि साथीके मरनेके बाद उसकी यादमेसे, पिछड़े हुए लोगोकी सेवामे उस भाईकी लगन ज्यादा बढ़ी होती।

नई दिल्ली, १२-१०-'४७

: ३४ :

एक कड़ुआ खत

एक मुसलमान दोस्त लिखते है :—

"मैं राष्ट्रीय विचारोंवाला एक मुसलमान हूं। जिंदगीभर—अगर मेरे २१ सालके जीवनको इन शब्दोमें जाहिर करने दिया जाय तो—मैंने हिंदू और मुसलमानकी जुबानमें कभी नहीं सोचा। मगर मेरे बड़े

भाई, वालिद और दूसरे रिश्तेदारोंने इस बातकी बड़ी कोशिश की कि मैं हिंदू और मुसलमानोंमें फर्क करूं। अपनी जातिके खिलाफ गद्दारी करनेवाला होनेकी वजहसे जालंधरके इस्लामिया कालेजमें मुझे भर्ती नहीं किया गया।

"मेरे वालिद और दूसरे रिश्तेदारोंने अप्रेलमें जालंधर छोड़ दिया, मगर मैं उनके साथ नहीं गया, क्योंकि पूर्वी पंजाब और उससे भी ज्यादा सारे हिंदुस्तानको अपना मैं वैसा ही देश मानता था जैसा कि वह दूसरे फिरकेके मेरे दोस्तोंके लिए था। मगर अगस्तकी वहशियाना वारदातोंने मुझे इतना नाउम्मीद कर दिया है कि मैं बयान नहीं कर सकता। जनवरी, १९४६में जब आजाद हिंद फौजके लोगोंपर मुकदमा चल रहा था तब जिन लड़कोंने मेरे साथ जलूस निकाला था, वे भी मेरी जान लेना चाहते थे। आखिरकार मैं उनके लिए एक मुसलमान ही था, जिसकी जान लेनेसे वे अपनी जातिके लोगोंकी वाहवाही हासिल कर सकते थे। इसलिए मुझे अपनी जान बचानेके लिए दिल्ली भागना पड़ा। मेरा ख्याल था कि जो लोग पाकिस्तानके बजाय अखंड हिंदुस्तानमें यकीन करते हैं, उनके साथ यहां ऐसा बरताव नहीं किया जायगा। मगर यहांकी हालत और भी बुरी है। जिन दोस्तोंके साथ मैं यहां ठहरा हूं, वे भी मुझे शककी निगाहसे देखते हैं।

"बराबरी और आजादीके मेरे प्यारे फरिश्ते, अब मुझे बताओ कि मैं अपने ज़मीर (विवेक) के खिलाफ अपने मां-बापके पास, जिंदगीभर उनकी हंसीका साधन बननेके लिए पच्छिमी पाकिस्तान चला जाऊं, या हिंदुस्तानमें बंधकके बतौर रहूं, जहांके लोग, जानवर बने हुए मेरे धर्म-भाइयोंके पापोंका बदला मुझे मारकर लेना चाहते हैं।"

ऊपरके खतको मैंने थोड़ा संक्षेप कर दिया है। उसमें कड़ुआहटको छुआ नहीं गया है। यह मानते हुए कि उस

खतकी बाते सही है, उसमें कड़ुआहटके लिए काफी गुंजा-इश है। बेहद विरोधी परिस्थितियोंमें ही किसी आदमीकी जांच होती है। भले दिनोंके दोस्त बहुतसे होते हैं। मगर वे किसी कामके नही होते। 'जो जरूरतपर काम आए, वही सच्चा दोस्त है।' क्या एक ही मजहबको माननेवाले लोग आपसमे ठीक उसी तरह नही लड़े है, जिस तरह आज हिंदू और मुसलमान लड़ रहे है ? जब आम जनताको इतने बरसोसे लगातार नफरतका पाठ पढ़ाया जाता रहा हो तब उससे इसके सिवा और क्या उम्मीद की जा सकती है कि वह आपसमे कट मरे। अगर खत लिखनेवाले भाई अपनी राष्ट्रीयताको ठीक समझते है तो उन्हे इस आड़े समयका सामना करना चाहिए। हमे उन लोगोकी नकल कभी नही करनी चाहिए जो कसौटीके वक्त अपनी श्रद्धा छोड़ देते है। इसलिए इन खत लिखनेवाले भाईको यह सलाह देते हुए मुझे जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती कि वे अपने पुराने दोस्तोके द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर दिए जानेका खतरा उठाकर भी अपने घर जालधर लौट जायं। ऐसे शहीदोसे ही हिंदू-मुस्लिम-एकता कायम होगी। अगर वे भाई अपने शब्दोको सच साबित करते है तो मै पहलेसे कह रखता हूं कि उनके मा-बाप खुले दिलसे उनका स्वागत करेंगे। हम इन्सानोकी किस्मतमे यही बदा है कि अपराधीके पापोंका फल निरपराधीको भोगना पड़े। यही ठीक भी है। निर-पराधियोंके मुसीबतें सहनेकी वजहसे ही दुनिया ऊपर उठती और बेहतर बनती है। इस खुले सत्यको बार-बार

दोहरानेके लिए मेरा आजादी और समताका फरिश्ता होना जरूरी नही है।

नई दिल्ली, १३-१०-'४७

: ३५ :

अकर्ममें कर्म

एक भाई लिखते है .

"आपने 'मेरा धर्म' लेखमें लिखा है, 'अकर्ममें कर्म' देखनेकी हालतको मै पहुंचा नहीं हूं। इस वचनके मानी कुछ विस्तारसे बताएंगे तो अच्छा होगा।"

एक स्थिति ऐसी होती है, जब आदमीको विचार जाहिर करनेकी जरूरत नही रहती। उसके विचार ही कर्म बन जाते है। वह संकल्पसे कर्म कर लेता है। ऐसी स्थिति जब आती है तब आदमी अकर्ममे कर्म देखता है, यानी अकर्मसे कर्म होता है, ऐसे कहा जा सकता है। मेरे कहनेका यही मतलब था। मै ऐसी स्थितिसे दूर हूं। उसतक पहुंचना चाहता हूं। उस ओर मेरा प्रयत्न रहता है।

नई दिल्ली, १६-१०-'४७

: ३६ :

एक पहेली

एक भाई लिखते है—

"मजाकमें भी दो उपनिवेशोके बीच लड़ाई होनेकी चर्चा न उठे तो अच्छा। मगर जब आपने इसका जिक्र करते हुए यहांतक कहा है कि इन दो राज्योंके बीच अगर लड़ाई हो तो यहांके मुसलमानोको पाकिस्तानके खिलाफ लड़नेके लिए तैयार रहना चाहिए, तब सवाल यह उठता है कि उस हालतमें पाकिस्तानके हिंदुओ और सिक्खोका भी अपने राज्यको तरफ यही फर्ज होगा या नहीं? अगर सांप्रदायिक सवालोपर ही लड़ाई हो तो फर्जको समझानेकी चाहे जितनी कोशिश की जाय, वफादारीका टिकना नामुमकिन मालूम होता है। मगर सांप्रदायिक सवालोको छोड़कर और किसी कारणसे लड़ाई हो तो यह तो नहीं ही कहा जा सकता कि यहांके मुसलमानों और पाकिस्तानके गैर-मुसलमानोको पाकिस्तानका ही विरोध करना चाहिए।"

हमारे दो राज्योके बीच लड़ाईकी सभावनाकी चर्चा मजाकमे तो उठाई ही नही जा सकती। 'भी' क्रिया-विशेषण यहा बेमौजू है; क्योकि ऐसी सभावना सचमुच मालूम पड़े, तभी इसपर चर्चा करना फर्ज हो जाता है। और तब भी चर्चा न करना बेवकूफी कहा जायगा।

जो नियम हिदुस्तानके मुसलमानोके लिए है, वही पाकिस्तानके गैर-मुस्लिमोंपर भी लागू होगा। मै तो अपने भाषणोमें और यहां होनेवाली चर्चाओंमे अपनी यह राय जाहिर कर चुका हू।

बेशक, यह राय काफी सोच-विचारके बाद कायम हुई है। वफादारी गैर-कुदरती तरीकेसे खड़ी नही की जा सकती। अगर परिस्थितियोसे वह पैदा नही होती तो वह कभी भी पैदा नही होगी, ऐसा कहा जा सकता है। ऐसे बहुतसे लोग है, जो मानते है कि ऐसी वफादारी मुमकिन ही नही है और इसलिए वे मेरी रायको हँसीमे उडा देते है। मेरी समझमे इसमे हँसने लायक कुछ भी नही है। हिंदुस्तानके मुसलमान पाकिस्तानके मुसलमानोंके खिलाफ तभी लड सकेगे, जब वे ऐसा करना अपना फर्ज समझेगे। यानी जब उनको यह साफ महसूस होगा कि उनके साथ तो हिंदुस्तानमे इन्साफका वरताव होता है और पाकिस्तानमे हिंदू वगैरह अल्पसंख्यकोके साथ बेइन्साफी हो रही है। ऐसी हालत मेरी कल्पनासे बाहर नही है।

इसी तरह अगर पाकिस्तानके हिंदू वगैरह गैर-मुस्लिमोको साफ तौरपर मालूम पडे कि उनके साथ इन्साफ हो रहा है, वे सुखसे और बेफिकरीसे वहा रहते है और हिंदुस्तानके मुसल-मानोके साथ बेइन्साफी होती है, तो पाकिस्तानकी हिंदू वगैरह अल्पसख्यक जातियां कुदरतन हिंदुस्तानके हिंदुओसे लड़ेगी और ऐसा करनेके लिए किसीको उन्हे समझानेकी जरूरत ही नही पडेगी।

हमारे देशकी वदकिस्मतीसे हिंदुस्तान और पाकिस्तान नामसे उसके जो दो टुकड़े हुए उसमे मजहबको ही कारण वनाया गया है। उसके पीछे आर्थिक और दूसरे कारण भले रहे हो, मगर उनकी वजहसे यह बटवारा नही हुआ होता।

आज हवामे जो जहर फैला हुआ है, वह भी उन्ही सांप्रदायिक कारणोसे ही पैदा हुआ है। धर्मके नामपर लूट-मार होती है, अधर्म होता है। ऐसा न हुआ होता तो अच्छा होता, ऐसा कहना अच्छा तो लगता है, मगर इससे वास्तविकताको वदला नही जा सकता।

यह सवाल कई वार पूछा गया है कि दोनोंके वीच लड़ाई होनेपर क्या पाकिस्तानके हिंदू, हिंदुस्तानके हिंदुओके साथ और हिंदुस्तानके मुसलमान पाकिस्तानके मुसलमानोके साथ लड़ेंगे? मैं मानता हूं कि ऊपर वतलाई हुई हालतमे वे जरूर लड़ेंगे। मुसलमानोकी वफादारीके वचनोपर भरोसा करनेमें जितना जोखिम है, उसके वजाय भरोसा न करनेमे ज्यादा है। भरोसा करनेमें भूल हो और खतरेका सामना करना पडे तो वहादुरीके लिए यह एक मामूली वात होगी।

उपयुक्त ढंगपर इस सवालको दूसरी तरहसे यों रखा जा सकता है कि क्या सत्य और न्यायके खातिर हिंदू हिंदूके खिलाफ और मुसलमान मुसलमानके खिलाफ लड़ेगा? इसका जवाव एक उलटा सवाल पूछकर दिया जा सकता है कि क्या इतिहासमे ऐसे उदाहरण नही मिलते?

साप्रदायिक सवालोंके सिवा दूसरे सवालोको लेकर भी दो राज्योके वीच लड़ाई हो सकती है, मगर यहां इसपर विचार करना फिजूल है। हिंदुस्तानके मुसलमान और पाकिस्तानके गैर-मुस्लिम पाकिस्तानके खिलाफ लड़े, यह वात मेरी कल्पनाके वाहर है।

इस सवालको हल करनेमे सवसे वड़ी उलझन यह है कि

सत्यकी दोनो ही राज्योमे उपेक्षा की गई है, मानों सत्यकी कोई कीमत ही न हो। ऐसी विषम स्थितिमे भी हम उम्मीद करे कि सत्यपर अटल श्रद्धा रखनेवाले कुछ लोग हमारे देशमे जरूर है।

नई दिल्ली, १७-१०-'४७

: ३७ :

प्रौढ़-शिक्षणका नमूना

चर्खा-जयतीके बारेमे सैकड़ों तार और पत्र मेरे पास आए थे। उनमेसे नीचेके पत्रने, जो इदौरकी प्रौढ-शिक्षण-सस्थाकी तरफसे मिला है, मेरा ध्यान खीचा है—

"आजके शुभ अवसरपर हजारो बड़ी-बड़ी कीमती भेंटें, बधाईके तार और खत आपकी सेवामें पहुंचे होगे। हिंदुस्तानके कोने-कोनेमें आपकी जन्मतिथि खुशीसे मनाई जा रही है। हर जगहका खुशी मनानेका ढंग जरूर कुछ-न-कुछ निराला होगा। हर एक यह कोशिश कर रहा होगा कि दूसरोसे बढ़ जाय, जशन मनानेमें जीत उसीकी हो। इन सब बातोको देखते हुए हमारी यह हिम्मत नहीं पड़ती कि किसी तरहकी भेंट यहांके प्रौढ़ साक्षरता-प्रचारके कार्यकर्ताओकी तरफसे आपकी सेवामें पेश की जाय। लेकिन फिर भी इस शुभ अवसरको जिस तरहसे यहां मनाया गया है उसे लिखे बिना नहीं रहा जा सकता। आशा है कि हमारे इस कार्यको ही भेंट समझकर आप स्वीकार करेंगे।

"ता० २-१०-'४७ से ता० ८-१०-'४७ तक जयंती मनानेकी योजना इस तरह रक्खी गई है कि इन सात दिनोमें ८० गांवोके लोग मिलकर

आधाशीशीके झाड़ोको जड़से उखाड़कर नष्ट कर दें। इन झाड़ोंने सारे जंगलको घेरकर पशुओके चारेका नाश कर दिया है। उनको उखाड़कर पशुओके जीवनको बचानेके लिए, बिना किसी भेदभावके, इस अवसरसे फायदा उठाते हुए एक बुरी चीजको यहांसे दूर कर दें। इस योजनाके मुताबिक २ तारीखको छोटे-छोटे बच्चोंसे लेकर ६०-७० सालके बूढोने, एक मामूली गरीबसे लेकर सबसे ऊंचे धनवानने और एक छोटे नौकरसे लेकर बड़े-से-बड़े सर्कलके अफसरने इस कामको अपनाया और दोपहरसे पहले आधाशीशीके बड़े-बड़े खेतोके पौधोको उखाड़कर साफ कर दिया। इससे चारेका बचाव, आधाशीशीके आगे बढ़नेकी रोक और उसका खात्मा हफ्तेके खतम होनेके पहले हो जायगा। बजाय जलूस निकालनेके यहांकी जनताके दिलमें प्रौढ़-शिक्षाद्वारा यह बैठाया जा रहा है कि ऐसे अवसरपर कोई ऐसा काम करना चाहिए, जो किसी भी जीवनके लिए लाभदायक हो। किसी भी किस्मकी बुराईके बीजको जड़मूलसे खोदनेका प्रयत्न प्रौढ़-शिक्षाकी तरफसे किया जा रहा है।

"ऊपरकी जो भेंट सेवामें पेश की जा रही है, उसपर लोग चाहे हंस लें; लेकिन हम पूरे दिलसे यह विश्वास करते है कि आप हमें निराश न करेंगे और इसे जरूर स्वीकार करेंगे।"

मै चरखा-जयती मनानेका यह एक अच्छा नमूना समझता हू। सूत निकालनेके अर्थमे चरखा भले ही न चला; लेकिन चरखेमे जो चीजे आ जाती है, उनमेसे आधाशीशीके पेड़ोंको जड़से उखाड डालना अवश्य आता है। उसमे परमार्थ है। ऐसे कामोंमे सहयोग होता है और ऐसे काम सब छोटे-बड़े निरंतर करते रहे तो उससे सच्चा शिक्षण मिलता है और सुंदर परिणाम निकलता है।

नई दिल्ली, १८-१०-'४७

: ३८ :

रंग-भेदका निवारण

[रेडियो-विभागके गुजराती भाइयोके साथ सवाल-जवाब]

सवाल—संयुक्त राष्ट्र संघ (यू० एन० ओ०) दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले हिंदुस्तानियोके साथ न्याय करनेमें असफल रहे तो दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानियोको क्या करना चाहिए ?

जवाब—सत्याग्रह। इसमे नाकामयाव होनेकी कोई वात ही नही है। यह मेरी कल्पनाके वाहरकी बात है। मेरा यह पक्का विश्वास है कि सत्याग्रह कभी असफल होता ही नही।

सवाल—संयुक्त राष्ट्र संघ अगर दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले हिंदुस्तानियोके सवालोको इन्साफसे हल करनेमें नाकामयाब साबित हो तो संस्थाके भविष्यपर इसका क्या असर हो सकता है ?

जवाब—अगर ऐसा होगा तो सयुक्त राप्ट्र सघकी साख चली जायगी।

सवाल—दुनियापर इसका क्या असर होगा ?

जवाब—यह कौन जानता है ? दुनियापर इसका क्या असर होगा, यह मै तो नही जानता।

सवाल—दुनियामें शांति कायम करनेके लिए जातिभेद और रंगभेद मिटाना जरूरी है। जो लोग इस बातको मानते हुए भी रंगभेदकी बुराईको दूर करनेके लिए कोई कोशिश नहीं करते, उनके लिए आपका क्या कहना है ?

जवाब—हां, रगभेद दूर करनेकी जरूरत तो है ही।

लेकिन जो लोग इसे जरूरी मानते हुए भी कोशिश नही करते, वे कमजोर और निकम्मे है। उन्हे कुछ करना नही है।

सवाल—मानव-समाजमेंसे रंगभेद दूर करनेके लिए आपकी क्या सलाह है ?

जवाब—इसका बहुत कुछ हल हिदुस्तानियोके हाथमे है। हिदुस्तान सीधे रास्ते आ जाय तो सब कुछ अच्छा हो जाय।

सवाल—आज जो हिंदुस्तानी हिंदुस्तानके बाहर दुनियाके अलग-अलग देशोंमें रहते है, उनके लिए आप क्या संदेश देते है ?

जवाब—जहा-जहा हिदुस्तानी रहे, वहा-वहां उन्हे अपना नूर दिखाना चाहिए। अपनी शक्तियां और गुण वताने चाहिए। एक भी हिदुस्तानीको ऐसा काम नही करना चाहिए जिससे हिदुस्तानको नुकसान पहुंचे।

नई दिल्ली, २०–१०–'४७

: ३९ :

गुरुदेवके अमृतभरे वचन

गुरुदेवने अपने दस्तखत देते हुए जो भाव प्रकट किए थे, उनके संग्रहमेंसे नीचेके वचन एक बंगाली भाईने भेजे है। उन्हे मूल भाषामें, हिंदुस्तानी अर्थके साथ नीचे देता हूं:

से लड़ाई ईश्वरेर विरुद्धे लड़ाई
जे युद्धे भाईके मारे भाई।

वह लड़ाई ईश्वरके ही खिलाफ है जिसमे भाई, भाईको मारता है।

जे करे धर्मेर नामे विद्वेष सचित
ईश्वरके अर्घ्य हते से करे वंचित।

जो धर्मके नामपर दुश्मनी पालता है, वह भगवानको अर्घ्यसे वचित करता है।

जे आंधारे भाईके देखिते नाहि पाय
से आंधारे अंध नाहि देखे आपनाय।

जिस अधेरेमे भाई भाईको नहीं देख सकता, उस अधेरेका अधा अपनेको ही नही देख सकता।

ईश्वरेर हास्यमुख देखिबारे पाइ
जे आलोके भाइके देखिते पाय भाइ।
ईश्वर प्रणामे तबे हात जोड़ हय
जखन भाइयेर प्रेमे मिलाइ हृदय॥

जिस उजेलेमे भाई-भाईको देख सकता है, उसीमे ईश्वरका हँसता मुंह दिखाई पड़ सकता है। जब भाईके प्रेममे दिल पसीज जाता है, तभी ईश्वरको प्रणाम करनेके लिए जाते हुए हाथ जुड़ जाते है।

नई दिल्ली, २३-१०-'४७

: ४० :

अहिंसा कहां, खादी कहां ?

काठियावाड़से एक भाई लिखते हैं—

"दूसरे सूबोंकी तरह यहां काठियावाड़में भी खादी और अहिंसापरसे अपनी श्रद्धा हटा लेनेवालोंकी तादाद बढ़ती जा रही है। राजनीतिमें अहिंसा कैसे चल सकती है, ऐसी दलीलें पेश करनेवाले आज कांग्रेसी गांधी-भक्त भी हैं।"

इस खतमें इस तरहकी बहुत-सी बातें लिखी हैं, मगर मैंने तो सिर्फ मुद्देकी बात उसमेंसे निकाल ली है।

इस छोटेसे वाक्यमें तीन विचारदोष हैं। मैं पहले कई बार समझा चुका हूं कि काठियावाड़ या दूसरे प्रदेशोंने अहिंसामें या खादीमें श्रद्धा रखी ही नहीं थी। मैंने यह मानकर अपने आपको धोखा दिया था कि लोग अहिंसाका पालन करते हैं और खादीको उसकी निशानीकी तरह अपनाते हैं। अहिंसाके नामपर लोगोंने कमजोरोंकी शांति रखी, मगर उनके दिलोंसे तो हिंसा कभी गई ही नहीं थी। अब तो इस बातको हम अच्छी तरहसे देख सकते हैं। काठियावाडमें राम नहीं है, यह बात तो जब मैं राजकोट-प्रकरणके सिलसिलेमें वहां गया था, तभी साफ मालूम हो गई थी। इसलिए यह कहनेमें कोई सार नहीं है कि आज काठियावाड़की श्रद्धा कम होती जा रही है।

राजनीतिमें अहिंसा नहीं चल सकती, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। जब आप परदेशी हुकूमतके खिलाफ लड़े तब वह राजनीति नहीं थी तो और क्या था ? आज तो राज-

नीति बहुत थोड़ी है। आज धर्मके नामपर लूट-पाट होती है। लोगोंने परदेशी हुकूमतके खिलाफ लड़नेमे जो शाति रखी, वह आज मानो खतम हो गई है।

तीसरा दोष यह है कि इसमे काग्रेसी और गाधी-भक्तोंके बीच भेद किया गया है। इस भेदको मै बिलकुल बेबुनियाद मानता हूं। अगर कोई गांधी-भक्त हो तो वह मै ही हू। मगर मुझे उम्मीद है कि ऐसा घमड मुझमे नही है। भक्त तो भगवानके होते है। मै तो अपनेको भगवान नही मानता। फिर मेरे भक्त कैसे ? और यह कैसे कहा जा सकता है कि अपने आपको गांधी-भक्त कहनेवाले लोग काग्रेसी नही है। काग्रेसके ऐसे अनगिनत सेवक है जो उसके चार आना सदस्य भी नही है। उनमेसे मै भी एक हू, इसलिए यह भेद कृत्रिम है।

आज देशमे कई चीजे चल रही है, उनमे मेरा जरा भी हिस्सा नही है, यह बात मुझे जोरोसे कहनी चाहिए। मै कह तो चुका हूं कि यह छिपी हुई बात नही है कि कांग्रेसने हुकूमत सभाली, तबसे वह अहिंसाको तिलाजलि दे चुकी है। मेरी रायमे, काग्रेस-सरकारने खुराक और कपडेपर जिस तरह अंकुश रखा है, वह घातक है। मेरी चले तो मै अनाजका एक दाना भी बाहरसे न खरीदू। मेरा विश्वास है कि हिंदुस्तानमें आज भी काफी अनाज है। सिर्फ कंट्रोलकी वजहसे देहातके लोग उसे छिपाकर रखनेकी जरूरत महसूस करनेको लाचार हुए है। अगर लोग मेरी बात मानते होते तो हिंदू, सिक्ख और मुसलमानोंके बीच कभी लड़ाई नही होती। साफ बात यह है कि मेरी बातकी आज कोई कीमत नही रही। मेरी

आवाजकी कीमत अब अरण्य-रोदनके समान हो गई है।

खादीको अहिंसासे अलग करे तो उसके लिए थोड़ी जगह जरूर है, मगर अहिंसाकी निशानीके रूपमे जो उसका गौरव होना चाहिए, वह आज नही है। राजनीतिमे हिस्सा लेनेवाले जो लोग आज खादी पहनते है, वे रिवाजकी वजहसे ऐसा करते है। आज जय खादीकी नही, बल्कि मिलके कपड़ेकी है। हम मान बैठे है कि अगर मिले न हों तो करोडों इन्सानोंको नंगा रहना पड़े। इससे बड़ा भ्रम और क्या हो सकता है? हमारे देशमे काफी कपास है, करघे है, चरखे है, कातने-बुननेकी कला है, फिर भी यह डर हमारे दिलोमे घर कर गया है कि करोड़ो लोग अपनी जरूरत पूरी करनेके लिए कातने-बुननेका काम अपने हाथमे नही लेगे। जिसके दिलमे डर समा गया है, वह उस जगह भी डरता है, जहां डरका कोई कारण नही होता। और डरसे जितने लोग मरते है, उतने मौतसे या रोगसे नही मरते।

नई दिल्ली, २४-१०-'४७

: ४१ :

नए विश्वविद्यालय

आजकल देशमें नए विश्व-विद्यालय कायम करनेकी आंधी-सी उठ खड़ी हुई है। गुजरातको गुजराती भाषाके लिए, महाराष्ट्रको मराठीके लिए, कर्नाटकको कन्नड़के लिए, उड़ीसाको उड़ियाके लिए और आसामको आसामी भाषाके लिए विश्व-

विद्यालय चाहिए। मुझे लगता है कि अगर सूबोंकी इन सपन्न भाषाओं और उन्हे बोलनेवाले लोगोंको पूरी-पूरी तरक्की करना हो तो ऐसे विश्व-विद्यालय होने ही चाहिए।

लेकिन ऐसा मालूम होता है कि इन विचारोंपर अमल करनेमे जरूरतसे ज्यादा उतावलापन दिखाया जा रहा है। इसके लिए सबसे पहले भाषावार सूबोंकी रचना की जानी चाहिए। उनका राज-तंत्र अलग होना चाहिए। बबई सूबेमें गुजराती, मराठी और कन्नड़ तीन भाषाए बोली जाती है। मद्रासके सूबेमे तामिल, तेलगू, मलयाली और कन्नड़ चार भाषाएं बोली जाती है। आध्र देशका अपना अलग विश्व-विद्यालय है। उसे कायम हुए थोडा समय हो गया, लेकिन उसने काफी तरक्की की है ऐसा नही कहा जा सकता। अनामली विश्व-विद्यालय तामिल भाषाके लिए माना जा सकता है; लेकिन मैं नही समझता कि उससे तामिल भाषाका पोषण होता है या उसका गौरव बढ़ा है।

नए विश्व-विद्यालयोके लिए ठीक-ठीक वातावरण होना चाहिए। उन्हे जमानेके लिए ऐसे स्कूल और कालेज होने चाहिए, जो अपने-अपने प्रातकी भाषाओके जरिए तालीम दे। तभी विश्व-विद्यालयका पूरा वातावरण उत्पन्न हुआ माना जा सकता है। विश्व-विद्यालय चोटीकी शिक्षण-सस्था है; लेकिन अगर नीव मजबूत न हो तो उसपर इमारतकी मजबूत चोटी खडी करनेकी आशा नही रखी जा सकती।

हालांकि हम राजनैतिक दृष्टिसे आजाद है, फिर भी पश्चिमके प्रभावसे अभी आजाद नही हुए हैं। जो यह मानते हैं

कि पश्चिममे ही सब कुछ है और हर तरहका ज्ञान वहींसे मिल सकता है, उनसे मुझे कुछ नही कहना है। न मेरा यही विश्वास है कि पश्चिमसे हमे कोई अच्छी चीज मिल ही नहीं सकती। वहां क्या अच्छा है और क्या बुरा है, यह समझने लायक प्रगति अभी हमने नही की है। अभी यह नही कहा जा सकता कि विदेशी हुकूमतसे आजाद हो गए है इसलिए हम विदेशी भाषा या विदेशी विचारोके असरसे भी आजाद हो गए है। क्या यह समझदारीकी बात नही होगी, क्या देशके प्रति हमारे फर्जका यह तकाजा नही है कि नए विश्व-विद्यालय कायम करनेके पहले हम थोड़ी देर ठहरे और अपनी नई मिली हुई आजादीके जीवन देनेवाले वातावरणमे कुछ सोचें? विश्व-विद्यालय सिर्फ पैसोंसे या बड़ी-बड़ी इमारतोंसे नही बनते। विश्व-विद्यालयोके पीछे जनताकी जाग्रत रायका होना सबसे जरूरी है। उनके लिए पढ़ानेवाले काबिल शिक्षकोकी जरूरत है। उनके कायम करनेवाले लोगोंमें काफी दूरंदेशी होनी चाहिए।

मेरे विचारसे विश्व-विद्यालय कायम करनेके लिए पैसेका इंतजाम करनेका काम लोकशाही हुकूमतका नही है। अगर लोग उन्हे कायम करना चाहेगे तो वे उनके लिए पैसे भी देगे। लोगोंके पैसेसे कायम किए जानेवाले विश्व-विद्यालय देशकी शोभा बढ़ाएगे। जिस देशका राजकाज विदेशियोंके हाथमे होता है, वहां सब कुछ ऊपरसे टपकता है और इसलिए लोग दिनोंदिन पराधीन या गुलाम बनते जाते है। जहां जनताकी हुकूमत होती है, वहां हर चीज नीचेसे ऊपर उठती है और

इसलिए वह टिकती है, शोभा पाती है और लोगोकी ताक़त बढाती है। जिस तरह अच्छी जमीनमे बोया हुआ बीज दस गुनी उपज देता है उसी तरह विद्याकी उन्नतिके लिए खर्च किया हुआ पैसा कई गुना लाभ पहुंचाता है। विदेशी हुकूमतके मातहत क़ायम किए गए विश्व-विद्यालयोंने इससे उलटा काम किया है। उनका दूसरा कोई नतीजा हो भी नही सकता था। इसलिए हिंदुस्तान जबतक नई मिली हुई आजादीको अच्छी तरह पचा नही लेता तबतक नए विश्वविद्यालय कायम करनेमें मुझे वडा डर मालूम होता है।

इसके अलावा, हिंदू-मुसलमानोके झगड़ेने ऐसा भयकर रूप ले लिया है कि आज पहलेसे यह कहना मुश्किल हो गया है कि हम कहां जाकर रुकेंगे। मान लीजिए कि अनहोनी बात हो जाय और हिंदुस्तानमे सिर्फ हिंदू और सिक्ख ही रहे और पाकिस्तानमे सिर्फ मुसलमान, तो हमारी शिक्षा जहरीला रूप ले लेगी। अगर हिंदू, मुसलमान और दूसरे धर्मके लोग हिंदुस्तानमे भाई-भाई बनकर रहेगे तो स्वभावत. हमारी शिक्षाका सौम्य और सुंदर रूप होगा। या तो हमारे देशमे अलग-अलग धर्मोके लोगोंके दोस्ती और भाईचारेसे रहते आनेके कारण जो मिली-जुली सुदर सभ्यता पैदा हुई है, उसे हम मजबूत बनाएगे और ज्यादा अच्छा रूप देंगे, या फिर हम ऐसे समयकी खोज करेंगे जब हिंदुस्तानमें सिर्फ हिंदू-धर्मके लोग ही रहते थे। इतिहासमे ऐसा कोई समय शायद न मिल सके। लेकिन ऐसा कोई समय मिला और हम

उसके पीछे चले तो हम कई सदी पीछे हट जायंगे और दुनिया हमसे नफरत करेगी और हमे कोसेगी। मिसालके लिए, अगर हम इतिहासके मुगलकालको भूलनेकी बेकार कोशिश करेंगे तो हमे दिल्लीकी, दुनियामें सबसे अच्छी जामा मसजिदको भूल जाना होगा, या अलीगढ़की मुस्लिम यूनिवर्सिटीको भूलना होगा, या दुनियाके सात अचरजोंमेंसे एक आगराके ताजको, या मुगल-कालमे बने हुए दिल्ली और आगराके वड़े-बड़े किलोंको भूलना पड़ेगा । तब हमें उसी दृष्टिसे अपना इतिहास फिरसे लिखना होगा। आजका वातावरण सचमुच ऐसा नहीं है जिसमे हम इस बारेमे किसी सही नतीजेपर पहुंच सके। अपनी दो महीनेकी आजादीको अभी हम गढ़नेमें लगे है। हम नही जानते कि आखिरमे वह क्या रूप लेगी। जबतक हम ठीक-ठीक यह नही जान लेते तबतक अगर हम मौजूदा विश्व-विद्यालयोंमें ही भरसक फेर-फार करे और आजकी शिक्षण-संस्थाओंमें आजादीके प्राण फूंकें तो इतना काफी होगा । इस तरह हमे जो अनुभव होगा, वह नए विश्व-विद्यालय कायम करनेमें हमारी मदद करेगा।

अब रही बात बुनियादी तालीमकी। इस तालीमको शुरू हुए अभी आठ बरस हुए है। इसलिए उसके अमलमें जो अनुभव हुआ है, वह हमें मैट्रिकके दर्जेसे आगे नही ले जाता। फिर भी जो लोग इसके प्रयोगमें लगे है, उनके मनमे बुनियादी तालीमका विकास होता ही रहता है। जिस सस्थाके पीछे आठ सालका ठोस अनुभव है, उसकी सिफारिशोको

कोई भी शिक्षाशास्त्री ठुकरा नही सकता। हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि यह बुनियादी तालीम देशके वातावरणमेसे पैदा हुई है और वह देशकी जरूरतोंको पूरा कर सकती है। यह वातावरण हिंदुस्तानके सात लाख गावोंमे और उनमें रहनेवाले करोड़ों लोगोमे छाया हुआ है। उनको भुलाकर आप हिंदुस्तानको भी भूल जायगे। सच्चा हिंदुस्तान शहरोंमें नही, बल्कि इन सात लाख गांवोमे बसा है। शहर विदेशी हुकूमतकी जरूरते पूरी करनेके लिए खड़े हुए थे। आज भी वे पहलेकी तरह निभ रहे है, क्योकि विदेशी हुकूमत हिंदुस्तानसे चली गई, लेकिन उसका असर अभी बना हुआ है--इतनी जल्दी वह जा भी नही सकता।

यह लेख मै नई दिल्लीमे लिख रहा हूं। यहा बैठे-बैठे मैं गांवोका क्या खयाल कर सकता हूं? जो बात मुझपर लागू होती है, वही हमारे प्रधान-मडलपर भी लागू होती है। फर्क यही है कि उसपर यह विशेष तौरसे लागू होती है।

यहां हम बुनियादी तालीमके खास-खास उसूलोंपर विचार करे--

(१) पूरी शिक्षा स्वावलंबी होनी चाहिए। यानी आखीरमे पूजीको छोडकर अपना सारा खर्च उसे खुद निकालना चाहिए।

(२) इसमे आखिरी दरजेतक हाथका पूरा-पूरा उपयोग किया जायगा। यानी विद्यार्थी अपने हाथोसे कोई-न-कोई उद्योग-धधा आखिरी दरजेतक करेंगे।

(३) सारी तालीम विद्यार्थियोंकी सूबेकी भाषा द्वारा दी जानी चाहिए।

(४) इसमें सांप्रदायिक धार्मिक शिक्षाके लिए कोई जगह नही होगी, लेकिन बुनियादी नैतिक तालीमके लिए काफी गुंजायश होगी।

(५) यह तालीम, फिर उसे बच्चे ले या बड़े, औरत ले या मर्द, विद्यार्थियोके घरोमे भी पहुचेगी।

(६) चूकि इस तालीमको पानेवाले लाखों-करोड़ों विद्यार्थी अपने आपको सारे हिंदुस्तानके नागरिक समझेंगे, इसलिए उन्हे एक अतर्प्रांतीय भाषा सीखनी होगी। सारे देशकी यह एक भाषा नागरी या उर्दूमे लिखी जानेवाली हिंदुस्तानी ही हो सकती है। इसलिए विद्यार्थियोको दोनो लिपियां अच्छी तरह सीखनी होगी।

इस बुनियादी विचारके बिना या इसको ठुकराकर जो नए विश्वविद्यालय कायम किए जायंगे वे मेरे विचारसे देशको कोई फायदा नही पहुंचाएंगे, उलटे नुकसान ही करेंगे। इसलिए सब शिक्षा-शास्त्री इस नतीजेपर पहुचेंगे कि नए विश्वविद्यालय खोलनेसे पहले थोडी देर ठहरना और सोच-विचार करना जरूरी है।

नई दिल्ली, २५–१०–'४७

: ४२ :

दोनों लिपियां क्यों ?

रैहानाबहन तैयबजी लिखती हैं

"१५ अगस्तके बाद दो लिपियोंके बारेमें मेरे खयाल बिलकुल बदल गए और अब पक्के हो गए हैं। मेरे खयालसे अब वक्त आ गया है कि इस दो लिपियोंके सवालपर खुल्लमखुल्ला और आम तौरसे साफ-साफ चर्चा हो। इसलिए अगर आप ठीक समझें तो इस खतको 'हरिजन'में छापकर उसपर चर्चा करें।

"जबतक हिंदुस्तान अखंड था और उसे अखंड रखनेकी उम्मीद थी तबतक नागरी लिपिके साथ उर्दू लिपिको चलाना मैं उचित—बल्कि जरूरी—मानती थी। आज हिंदुस्तान, पाकिस्तान दो जुदे राज्य बन गए हैं (मुसलमानोंकी निगाहमें तो दो जुदे राष्ट्र)। हिंदुस्तानी हिंदुस्तानकी राष्ट्रभाषा : नागरी हिंदुस्तानकी खास और मान्य लिपि—फिर नागरीके साथ उर्दूके गठबंधनकी क्या जरूरत है ? इस सवालपर मैं बराबर विचार करती रही हूं और अब मेरा दृढ़ विश्वास हो गया है कि हिंदुस्तानीपर उर्दू लिपि लादनेमें इतना ही नहीं कि कोई फायदा नहीं, बल्कि सख्त नुकसान है। मैं मानती हूं कि :

"१. हिंदू-मुस्लिम-ऐक्य और मैत्री, भाषा या लिपिसे नहीं हो सकती—सिर्फ सामाजिक मेल-जोलसे हो सकती है। यह चीज मैं जीवन-भर देखती आई हूं। मुसलमान खुद यही कहते आए हैं और अब भी कहते हैं। साथ मिलने-जुलने, रहने-सहने, खाने-पीने, खेलने-कूदने, कामकाज करनेसे ही ऐक्य बढ़ सकता है। उर्दू लिपि सामाजिक मेल-जोलकी जगह कभी नहीं ले सकती।

"२. मुसलमानोंको अगर आप वफादार हिंदुस्तानी बनाना चाहते

हैं तो उनमें और वाकीके हिंदुस्तानियोंमें अब कोई फर्क नहीं करना चाहिए। अगर वे हिंदुस्तानमें रहना चाहते हैं तो और हिंदुस्तानियोंकी तरह रहें। हिंदुस्तानी सीखें, नागरी सीखें। अगर उर्दूका आग्रह हो तो बेशक उन्हें उर्दू सीखनेकी सहूलियतें दी जायं। मगर उन्हें खुश करनेके खातिर हिंदुस्तानकी सारी जनतापर उर्दू लिपि क्यो लादी जाय ? इसमें मुझे सख्त अन्याय नजर आता है और मैं इसके बिलकुल खिलाफ हूं। गैर-मुसलमानोंपर यह अन्याय, कि उन्हें फिजूल एक इतनी मुश्किल, दोषपूर्ण और हिंदुस्तानीके लिए निकम्मी—(उर्दूलिपिमें साहित्यिक हिंदुस्तानी लिखना महा कठिन है; क्योंकि संस्कृत शब्दोंकी बड़ी तोड़-मरोड़ करनी पड़ती है।)—लिपि सीखनेमें अपनी शक्ति खर्च करनी पड़ती है और मुसलमानोंपर यह अन्याय कि उन्हें अपना दुराग्रह छोड़नेका आप कोई मौका ही नहीं देते ! उनकी बेजा मांग पूरी करके आप उनमें और अन्य अल्पसंख्यकोंमें एक कृत्रिम फर्क पैदा कर देते हैं। इससे गैर-मुसलमानोंको चिढ़नेका हक मिलता है और मुसलमानोंको अपनी अलग-अलग जमात बनाकर बैठ जानेका मौका मिलता है। (इस चीजका सबूत मेरा अपना खानदान देता है।) अगर आपने उर्दू लिपि भी चलाई तो मुसलमान सदा हिंदमें परदेशी बनकर रहेंगे और कामचलाऊ नागरीसे संतोष मानकर अपना सारा ही व्यवहार उर्दूमें चलाएंगे। यह मेरा अनुभवजन्य, इसलिए, दृढ़ विश्वास है। बापूजी ! गुस्ताखी माफ—आप लोग मुसलमानोंसे इतने अलग रहे हैं कि आपको उनके मानसकी बिलकुल खबर नहीं। यही वजह है कि पाकिस्तान हो गया। और मुझे यकीन है कि अगर आपने नागरीके साथ उर्दूको भी राष्ट्रलिपि बना लिया तो आप हिंदुस्तानके भीतर एक दूसरा पाकिस्तान खड़ा कर देंगे।

"३. मैं मानती हूं कि जो शक्ति आप लोगोंको उर्दूलिपिके प्रचारमें, हर किताबकी द्विलिपि बनानेकी तजवीजोंमें, कातिब, ब्लॉक्स और छपाईकी तोहमतोंमें खर्च करनी पड़ती है सो अब खरे महत्त्वके कामोंमें लगानी

चाहिए। हमें हिंदुस्तानी भाषा बनानी है, कोष तैयार करने है, साहित्य खड़ा करना है, उर्दू लिपिके आग्रहसे हमारा बोझ चौगुना हो जाता है, काममें रुकावटें पैदा होती है और वक्त फिजूल बिगड़ता है। इसमें शक नहीं कि उर्दू-हिंदी दोनो जाने बिना हिंदुस्तानी बनाना अशक्य है। लिहाजा प्रचारकोंको, लेखकोको, हमारे प्रचारक-मदरसोमें नागरी-उर्दूका ज्ञान होना जरूरी है। लेकिन आम जनताको उर्दू लिपिसे क्या गरज ? उसकी जबान हिंदुस्तानी हो तो बिलकुल काफी है। पूज्य प्यारे बापूजी, मैंने आप लोगोकी सारी दलीलें बड़े ध्यानसे सुनी है और एक भी गले नहीं उतरती। इसलिए आज यह चर्चा कर रही हूं। हम हिंदुस्तानियोंका यही सूत्र रहे—हमारी राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी, हमारी राष्ट्रलिपि नागरी। बस !

"४. अब एक मुस्लिम हिंदुस्तानीकी हैसियतसे मेरी बिनती है। खुदाके लिए आप मुसलमान हिंदुस्तानियोको अपने ही मुल्कमें परदेशियों-की तरह रहनेका प्रोत्साहन न दीजिए। वे तो यही चाहते है। आप ब्रिटेन और पाकिस्तानका खेल खेलते रहें और मुसलमान हर जगह बाजियां जीतते रहें ! बापू, मैं बहुत घबराई हुई हूं। मैं मुसलमान-समाजसे वाकिफ हूं। उनकी महत्वाकांक्षाएं मैं जानती हूं, भले आप जानने या माननेसे इन्कार करें। खुदाके लिए मेरी बातपर ध्यान दीजिए।

"आम तौरसे हिंदवासी मुसलमानोकी 'हिंदुस्तानी' यानी 'उर्दू'। वे कोई और 'हिंदुस्तानी' न जानते है, न मानते है। आकाशवाणी (रेडियो)की भाषापर मुसलमानोकी कड़ई टीका यह है कि भई, इस जबानको तो हम नहीं समझ सकते, कितने संस्कृत अल्फाज है ? 'समाज', 'भाषा', 'निर्णय', 'निश्चय' जैसे प्रचलित शब्द भी हमारे वफादार मुसलमान हिंदुस्तानियोके लिए हराम हैं। अगर सारी जनता उर्दू सीख गई तो क्या आप मानते है कि मुसलमान उर्दूके सिवा कुछ भी लिखेंगे-पढ़ेंगे ?

मैं नहीं मानती और मेरे अविश्वासके पीछे हिंदवासी मुसलमानोंका सारा इतिहास पड़ा हुआ है।

"बापू! हाथ जोड़कर अर्ज है—सज्जनताके साथ क्या सत्यदर्शन (Realism) नहीं रह सकता?"

यह खत सोचनेके काबिल है। रैहानाबहनके दिलमें हिंदू-मुस्लिमका भेद नही है। दोनो एक है ऐसा वह मानती है और वैसे ही बरतती है। मै भी दोनोंमे भेद नही करता। हम दोनों मानते हैं कि हिंदू और मुसलमानोंमे आचार-भेद है, पर वह भेद दोनोंको अलग नही रखता। धर्म दो हैं, फिर भी दोनोंकी जड़ एक है।

तब भी रैहानाबहनकी बातमे मै भूल देखता हूं। हम दो लोग (नेशन) नही हैं। दो लोग माननेमें हम हिंदुस्तानको बडा नुकसान पहुंचाएंगे। क़ायदेआजम भले दो लोग माने और ऐसे माननेवाले भले हिंदू भी हों, लेकिन सारी दुनिया गलतीमें फँसे तो क्या हम भी फँसे? ऐसा कभी नहीं हो सकता।

अगर राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी है तो उसे दोनों लिपियोंमें लिखनेकी छूट होनी चाहिए। अगर हम हिंदूको या मुसलमानको एक ही लिपिमें लिखनेके लिए मजबूर करें तो हम उसके साथ गैरइन्साफी करेंगे और जब यह गैरइन्साफी अल्पमतपर उतरती है तब बहुमतका गुनाह दुगुना माना जाय।

मैं नही कहता कि हिंदुस्तानके ४० करोड़को दोनों लिपियां सीखना है। ऐसा अवश्य है कि जो सारे मुल्कमें फिरता है, जिसको अपने सूबे ही की नही; बल्कि सारे मुल्ककी सेवा करनी

है, उसे दो लिपियां सीखनी ही चाहिए, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान्।

अगर हिंदीको राष्ट्रभाषा बनना है तो लिपि नागरी ही होगी, अगर उर्दूको बनना है तो लिपि उर्दू ही होगी। अगर हिंदी उर्दूके संगमके जरिए हिंदुस्तानीको राष्ट्रभाषा बनना है तो दोनो लिपियां जरूरी है। याद रखना चाहिए कि आज सचमुच उर्दू लिपि या उर्दू भाषा सिर्फ मुसलमानोकी नही है। ऐसे असख्य हिंदू है, जिनकी मादरी जबान उर्दू है और वे उसे उर्दू लिपिमे ही लिखते है। यह भी याद रखना चाहिए कि दो लिपियोंकी बात आजकी नही है। मै जब हिंदुस्तानमे आया तबसे यह बात चली है। यही विचार मैंने इदौरके हिंदी-साहित्य-सम्मेलनके सामने रखे थे। उस वक्त अगर कोई विरोध हुआ था तो नहीके बराबर था। उसका मुझे स्मरण भी नही है। हा, नाम मैंने हिंदी ही कायम रखा था। व्याख्या वही की थी, जो आज करता हूं। मेरे खयालसे आज जब विचारोंकी उथल-पुथल हो रही है तब हमारी पतवार सिर्फ एक, और मजबूत होनी चाहिए।

जबतक उर्दू लिपिका संबंध मुसलमानोसे माना जाता है तबतक हमारा फर्ज है कि हम हिंदुस्तानीके नामपर और दोनों लिपियोंपर कायम रहे। यह बात सबको साफ समझमे आने-जैसी है। किसी भी कारणसे हो, हमने कई जगह यूनियनमे मुसलमानोंपर ज्यादतियां की है। पाकिस्तानमे हिंदुओ और सिखोंपर ज्यादतिया शुरू हुईं, इसलिए यूनियनमे

हिंदुओं और सिखोंने मुसलमानोंपर कीं, ऐसा जवाब हमारी तरफसे ज्यादतियोंके समर्थनमें हो नही सकता। ऐसे मौकेपर कहना कि हिंदुस्तानमें राष्ट्रलिपि एक नागरी ही होगी, इसे मैं मुस्लिम भाइयोंपर नागरीको 'लादना' कहूंगा। हां, अगर मुसलमान उर्दू लिपिमें ही लिखें और उर्दू व हिंदुस्तानीमें कोई फर्क ही न समझें तो मैं उसे मुस्लिम भाइयोंका हठ कहूंगा। शायद ऐसा भी माना जायगा कि उनका दिल हिंदुस्तानमें नही है।

रैहानावहनका यह कहना कि उर्दू लिपिको नागरीके साथ रखनेमें मुसलमानोंको राजी रखनेकी या उनकी खुशामद करनेकी बात होगी, नासमझीकी बात है। राजी रखना कभी फर्ज होता है और किसी वक्त गुनाह भी होता है। भाईका अपने भाईको राजी रखनेके लिए उत्तरमें जानेके बदले कभी दक्खिनमें जाना फर्ज हो सकता है, लेकिन शराब पीना गुनाह होगा। इस तरह तो वह अपना और अपने भाईका बुरा करेगा। मुसलमान भाईको राजी रखनेके लिए मैं कलमा नहीं पढ़ सकता, न वह मुझे राजी रखनेके लिए गायत्री पढ़ सकता है, कलमा और गायत्री दोनों एक ही चीजें हैं, ऐसा मानकर ही दोनों एक-दूसरेको समझ सकते हैं। लेकिन यह दूसरी बात है, और ऐसा होना भी चाहिए। इसीलिए तो एकादश व्रतमें सर्वधर्म-समानताको जगह दी गई है।

तात्पर्य यह कि सबको राजी रखनेमें दोष ही है, ऐसा नहीं कह सकते, बल्कि बाज दफा वही फर्ज होता है।

बहन फिर लिखती हैं कि नागरी लिपि प्रमाणमें पूर्ण है;

उर्दू प्रमाणमे अपूर्ण । उर्दू पढनेमे मुश्किल है और संस्कृतके शब्द उर्दूमे लिखे ही नही जाते । इस कथनमे थोड़ा वजूद (वजन) है जरूर । इसका अर्थ यह हुआ कि नागरी लिपि पूर्ण होते हुए भी सुधार मागती है, वैसे ही उर्दू लिपि अपूर्ण होनेके कारण सुधार मागती है । सस्कृत शब्द उर्दू लिपिमे लिखे ही नही जाते, ऐसा कहना ठीक नही है । मेरे पास सारी गीता उर्दू लिपिमे लिखी पडी है । लिपियोमे सुधार तब हो सकता है, जब वे गिरोहबंदी और जनूनका कारण नही रहती । सिंधी लिपि उर्दूका सुधार ही है न ?

अतमे रैहानाबहनसे मै कहना चाहूंगा कि उनका खत हिंदुस्तानीका एक नमूना है । उसमे अरबी शब्द है तो सस्कृत भी है । हिंदुस्तानीकी खूबी ही यह है कि उसे न संस्कृतसे वैर है, न अरबी-फारसीसे । हिंदुस्तानी तो ताकतवर तब बनेगी जब वह अपनी मिठासको कायम रखकर दुनियाकी सब भाषाओका सहारा लेगी, लेकिन उसका व्याकरण तो हमेशा हिंदी रहेगा । 'हिंदू' का बहुवचन 'हिंदुओं' है, 'हनूद' नही । रैहानाबहन उर्दू अच्छी जानती है और हिंदी भी । दोनो लिपियोंमे लिख भी सकती है । जब मै यरवदा जेलमे था तब वह और जोहराबहन अंसारी मुझे उर्दूके पाठ खतोकी मारफत सिखाती थी । मेरी सलाह है कि वह अपना वक्त हिंदुस्तानीको बढानेमे और दोनों लिपिया आसानीसे सिखानेमे दे । यह काम वह तभी कर सकती है जब उनका अपना अज्ञान दूर हो । अगर वह जो मानने लगी है सो ठीक है तो मुझे कुछ कहनेको नही रह जाता । तब तो

मुझे एक नया पाठ सीखना होगा और उर्दू लिपिको जो जगह मैं देता हूं, उसे भूलना होगा ।

नई दिल्ली, १-११-'४७

: ४३ :

हम ब्रिटिश हुकूमतकी नकल तो नहीं कर रहे हैं ?

"१५ अगस्त आई और चली गई । सारे हिंदुस्तानके लोगोंने बड़ी धूमधाम और अनोखे उत्साहसे आजादी-दिन मनाया । उनका यह सोचना ठीक ही था कि साम्राज्यवादी हुकूमतके नीचे उन्हें जितनी भी भयंकर मुसीबतें और यातनाएं सहनी पड़ीं, वे सब अब पुराने जमानेकी निशानियां बन जायंगी । जीवनमें पहली बार गांवके गरीब-से-गरीब किसानकी निराशाभरी आंखें खुशीसे चमक उठीं । इस मौकेपर शहरके मजदूरका उदास दिल भी खुशीसे उछलने लगा । इस विशाल देशके हर दबे और कुचले हुए मर्द और औरतने आजादी-दिन दिली जोश और उमंगके साथ मनाया, क्योंकि बरसोंके दुःख-दर्द और कुरबानियोंके बाद आखिर हिंदुस्तान-के पराधीन मानवको आशाकी झलक दिखाई दी, उसे बेहतर दिनों और बोझोंके हलके होनेकी उम्मीद बंधी ।

"लेकिन आजादी-दिनकी खुशियोंके बाद ही नई दिल्लीसे एक सरकारी सूचना निकली, जिसमें सूबोंके गवर्नरोंकी तय की हुई तनख्वाहों और भत्तोंकी घोषणा की गई । भोली-भाली जनताने यह आशा लगा रखी थी कि साम्राज्यवादी हुकूमतके साथ ही ऊंचे अफसरोंकी बड़ी-बड़ी तनख्वाहोंके भारसे दबा हुआ शासन-तंत्र भी खतम हो जायगा, जो गुलाम देशको

साम्राज्यवादके फंदेमें फँसाए रखनेके लिए ही पैदा किया गया था। आजसे पहले देशके हर राजनैतिक नेताने, हर मशहूर अर्थ-शास्त्रीने, वाइसराय, केंद्रके मंत्रियो और सूबोके गवर्नरो वगैरह सरकारी हाकिमोंको दी जाने-वाली बड़ी-बड़ी तनख़ाहो और उनके भत्तोंकी साफ शब्दोमें कड़ी निंदा की थी। इस बारेमें कांग्रेसने कई प्रस्ताव पास किए थे। कराची-कांग्रेसके मशहूर प्रस्तावमें सरकारके ऊंचे-से-ऊंचे हाकिमकी तनखाह ५०० रुपये माहवार नियत की गई थी; लेकिन आज शायद वह सब भुला दिया गया है और गवर्नरोंकी ऊंची तनख़ाह ५५०० रुपये माहवार तय की गई है।

"सबसे पहले हम यह देखें कि दूसरे देशोके ऐसे ऊंचे हाकिमोको क्या तनखाह दी जाती है। दुनियाके सबसे धनी देशकी सबसे धनी स्टेट—न्यूयार्क—अपने गवर्नरको १० हजार डालर सालाना देती है, जो हमारे हिसाबसे तीन हजार रुपये माहवारसे भी कम होता है। अमेरिकाके आइडाहो नामक स्टेटके गवर्नरकी तनख़ाह १५०० रुपये माहवारसे भी कम होती है। अमेरिकाकी एक दूसरी स्टेट मेरीलैंड अपने गवर्नरको १ हजार रुपये माहवारसे कुछ ही ज्यादा देती है। इलिनोइसका गवर्नर, जिसकी आबादी उड़ीसा या आसामके बराबर है, ३ हजार रुपयेसे कुछ ही ज्यादा पाता है। दक्षिण अफ्रीकाके यूनियनमें सूबोके शासकोको, जो हमारे हिंदुस्तानी गवर्नरोकी हैसियतके होते है, हर माह २,२००से २,७०० रुपयोके बीच वेतन दिया जाता है। आस्ट्रेलियामें क्वींसलैंडके गवर्नरको ३ हजार रुपये माहवारसे कुछ ही ऊपर तनखाह मिलती है। इसे सब जानते हैं कि स्टेलिनको ३५० रुपये माहवार वेतन दिया जाता था। ग्रेट ब्रिटेन केबिनेट मिनिस्टरोकी तनखाहोका मुकाबला हमारे गवर्नरोकी तनख़ाहोसे नहीं किया जा सकता, क्योकि वे लोग अपने पूरे देशपर शासन करते है। और फिर भी ब्रिटिश मंत्रिमंडलके मंत्रीकी तन-ख़ाह हिंदुस्तानी गवर्नरकी तनखाहसे ज्यादा नहीं होती। यह ध्यानमें रखने

लायक बात है कि ऊपरके देशोंके उन हाकिमोंको अपनी तनखाहोंमेंसे इनकमटैक्स और दूसरे टैक्स भी देने होते हैं। इसलिए बिना किसी विरोधके यह कहा जा सकता है कि हिंदुस्तानी गवर्नरकी तनख़ाह दुनियामें सबसे ऊंची है।

"इन बातोपर हम दूसरे पहलूसे विचार करें। हिंदुस्तानका गवर्नर अपने सूबेका अव्वल नंबरका सेवक है। इसलिए हम इस सेवककी आमदनीका उसके मालिक (जनता)की आमदनीसे मुकाबला करें। इस लड़ाईके पहले हर हिंदुस्तानीकी औसत सालाना आमदनी ६५ रुपये कूती गई थी। अगर हम एक मामूली किसान या मजदूरकी औसत सालाना आमदनीका हिसाब लगावें तो वह इससे बहुत कम होगी। प्रो० कुमारप्पाके हिसाबसे यह सिर्फ १२ रुपये थी, और प्रिंसिपल अग्रवालने उसका आंकड़ा १८ रुपये सालाना तय किया है। इन सारे औसतोका हिसाब लगानेपर हम इस नतीजेपर पहुंचते हैं कि एक हिंदुस्तानी गवर्नरकी आमदनी अपने मालिकोंकी आमदनीसे हजार गुना ज्यादा होती है। और अगर हम नीचे-से-नीचे वर्गके लोगोंकी, जिनकी हिंदुस्तानमें बहुत बड़ी तादाद है, सालाना आमदनीको लें तो सेवक और मालिकोंकी आमदनीके बीचका यह भेद ४ हजार गुनातक पहुंच जाता है। अमेरिकामें भी, जिसे सबसे बड़ा पूंजीवादी देश कहा जाता है और जहां सबसे बड़ी आर्थिक विषमता पाई जाती है, एक गवर्नरकी आमदनी एक अमेरिकन नागरिककी औसत आमदनीसे सिर्फ २० गुना ज्यादा होती है।

"दूसरी तरहका मुकाबला इस समस्यापर और ज्यादा प्रकाश डाल सकेगा। सूबोंके शासन-प्रबंधमें चपरासियोंका नंबर सरकारी आफिसोंमें सबसे नीचा होता है। मध्यप्रांतमें एक चपरासीकी माहवार तनख़ाह ११ रुपये है। दूसरे सूबोंमें वह कुछ कम या ज्यादा हो सकती है। जब एक गवर्नर और चपरासीकी तनख़ाहमें इतना फर्क हो तब सूबेका पूरा शासन-तंत्र आम लोगोंके भलेके लिए सामाजिक और उन्नत व्यवस्था कायम

करनेमें उत्साहसे एक आदमीकी तरह कैसे काम कर सकता है ? थोड़ेमें, हम चाहे अपनी नीची-से-नीची राष्ट्रीय आमदनीको लें, नीचे-से-नीचे चपरासीकी तनख्वाहको लें, या चोटीपर खड़े गवर्नरकी तनख्वाहको लें, हमें दुनियामें हिंदुस्तानकी मिसाल कहीं नहीं मिलेगी।

"जब सूबोंके गवर्नरोंको इतनी बड़ी-बड़ी रकमें दी जाती हैं तब हम दूसरे ऊंची-ऊंची रकमें पानेवाले सरकारी हाकिमोंकी तनख्वाहें घटानेके बारेमें कैसे सोच सकते हैं ? अगर ऊंची तनख्वाहें घटाई नहीं जा सकतीं और नीची तनख्वाहें बढ़ाई नहीं जा सकतीं तो सूबोंके माल-मंत्री सारी प्रजाको शिक्षा देने, या डॉक्टरी सुभीते देने वगैरहकी योजनाओंको अमलमें लानेके लिए पैसा कहांसे लावें ? हम इस भ्रममें न रहें कि आजादीके आते ही कलकी भयंकर गरीबीवाला राष्ट्र थोड़े ही समयमें धनी और उन्नत राष्ट्र बन जायगा, ताकि वह अपने गवर्नरों और दूसरे ऊंचे हाकिमोंको बड़ी-बड़ी तनख्वाहें दे सके। सोवियट यूनियनको अपनी राष्ट्रीय आमदनी बढ़ानेके लिए तीन पंचवर्षीय योजनाएं बनानेकी जरूरत पड़ी। बंबई-योजना बनानेवाले लोगोंने भी १०० अरब रुपयेकी पूंजी लगानेपर १५ सालके आखिरमें हर हिंदुस्तानीकी औसत सालाना आमदनी १३० रुपये हो कूती है। इसलिए हिंदुस्तानके एक ही दिनमें धनी बन जानेके सुनहले सपने जितनी जल्दी छोड़ दिए जायं, उतना ही हम सबके लिए अच्छा होगा। सत्य बड़ा कठोर है और हमें ईमानदारीसे उसका भलीभांति सामना करना चाहिए। हम अपने हाकिमोंको इतनी बड़ी-बड़ी रकमें नहीं दे सकते।"

—टी० के० वेग

हालांकि मैं प्रो० वेगद्वारा दिए हुए आंकडोंके बारेमें निश्चित रूपसे कुछ नहीं कह सकता, फिर भी उन्होंने हिंदुस्तानके गवर्नरों और दूसरे ऊंचे हाकिमोंकी बड़ी-बड़ी तन-

खाहोके बारेमे और हमारी सरकारोंद्वारा अपने नौकरोको दी जानेंवाली ऊची-से-ऊची और नीची-से-नीची तनखाहोकी भयकर विषमता या फर्कके बारेमे जो कुछ लिखा है, उसका समर्थन करनेमे मुझे कोई हिचकिचाहट नही है।

नई दिल्ली, २-११-'४७

: ४४ :

दो अमेरिकन दोस्तोंका दिलासा

मेरे पास अमेरिकन दोस्तोके, जिन्हे मै जानता भी नही, बहुतसे खत आते है। उनमेसे दो ऐसे दोस्तोके खतोमेसे नीचेके अश यहा देने लायक मालूम होते है :

"अपने देशकी आजकी दुर्दशाके कारण आपको जो भारी दुःख हो रहा है उसका यह तकाजा है कि मै हिंदुस्तानकी मौजूदा दुःखभरी घटनाओंके बारेमे आपके मनमें उठ रहे विचारों और चिंताओंमें दखल दूं और आपको यह याद दिलाऊं कि आपके सुंदर और प्रेरणाभरे शब्दोंने दुनियाके हर कोनेमें जड़ जमा ली है।

"यह तो स्वाभाविक बात है कि इन दुःखभरी घटनाओंके कारण आप किसी कदर निराशा-सी महसूस करें। मेरे खत लिखनेका यही मतलब है कि आपकी यह निराशा बहुत ज्यादा नहीं बढ़नी चाहिए और आपको पस्तहिम्मत तो कभी होना ही नहीं चाहिए।

"बीज कभी एकदमसे सुंदर और खुशबूदार फूलका रूप नहीं लेता। इसके लिए उसे पहले सड़ना होता है, उगना होता है और विकासके खास दरजोंसे गुजरना पड़ता है। और अगर विकास या तरक्कीके किसी दरजे-

पर उसमें कोई गड़बड़ी पैदा होती है तो उस समय उसके पास मालीका हाजिर रहना सबसे जरूरी हो जाता है। जब माली रोगी पौधेकी सार-संभालके निःस्वार्थ काममें पूरी तरह खो जाता है तब शायद वह अपने बगीचेके दूसरे पौधोंके विकासको पूरी तरह नहीं देख सकता, जो बढ़कर मानो अपने दुःखी भाईकी सेवा और हमदर्दीमें उसका साथ दे रहे हों।

"मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप दुनियाके सारे देशोंके सारे वर्गों, जातियों और धर्मोंके बेशुमार लोगोंका खयाल करें। वे सब भी आज आपके साथ शांतिके लिए भगवानसे प्रार्थना कर रहे हैं। हम सब, जिनकी आशाओंको आपने इतने अच्छे ढंगसे जाहिर किया है और जिन्हें शांतिके विज्ञानकी मददसे पाई गई आपकी बड़ी-बड़ी विजयोंसे नया बल और नया साहस मिला है, एक साथ मिलकर यह प्रार्थना करते हैं कि भगवान आपको आशीर्वाद दे और अपने गौरवपूर्ण कामको जारी रखनेके लिए जिंदा रखे, जिसका बहुत-सा हिस्सा अभी आपको पूरा करना है।"

हो सकता है कि इन दोस्तोंका कहना सच साबित हो और अभीतक हिंदुस्तान जिस पागलपनभरे रक्तपातसे गुजर रहा है—हालांकि पहलेका गुस्सा और पागलपन अब कम हुआ दिखाई देता है—वह इतिहासमें असाधारण न साबित हो। लेकिन आज हिंदुस्तान जिस हालतसे गुजर रहा है उसे हमें तो असाधारण ही मानना चाहिए। अगर हम यह मानें कि हिंदुस्तानने जैसी आजादी पाई है, उसका श्रेय अहिंसाको है तो जैसा कि मैंने बार-बार कहा है, हिंदुस्तानकी अहिंसक लड़ाई केवल नामकी ही थी, असलमें वह कमजोरोंका निष्क्रिय प्रतिरोध था। इस बातकी सचाई हम हिंदुस्तानकी आजकी घटनाओंमें प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

नई दिल्ली, ९-११-'४७

: ४५ :

'सिर्फ मुसलमानोंके लिए'

एक खत लिखनेवाले भाईने इस वातकी तरफ मेरा ध्यान खीचा है कि पहले मैंने रेलवे स्टेशनोंपर हिंदुओं और मुसलमानोंके पानीके लिए अलग-अलग वरतनोंके इस्तेमालको वुरा वताया था, लेकिन आज तो सिर्फ मुसलमानोंके लिए और गैर-मुसलमानों या हिंदुओंके लिए अलग डिब्बे रिजर्व किए जाते हैं। मै नही जानता कि यह वुराई कहांतक फैली है, लेकिन मै यह जरूर जानता हूं कि यह भेद-भाव हिंदुओं और सिखोंके लिए वड़ी शर्मकी वात है। मेरे खयालमे सिर्फ मुसलमानोंकी जानकी हिफाजत करनेके लिए ही रेलवेवालोंको यह फर्क करना जरूरी मालूम हुआ है। अगर हिंदू और सिख लोग मुसलमान मुसाफिरोंके साथ वेजान मालअसवावकी तरह कभी सलूक न करनेका इरादा कर लें और रेलवे अधिकारियोंको इस वातका यकीन दिला दें कि ऐसा गुनाह वे फिर कभी न करेंगे तो यह भेदभाव किसी भी दिन (जितना जल्दी हो उतना अच्छा) मिटाया जा सकता है। यह तभी हो सकता है, जव लोग अपने पापोंको खुले आम मंजूर करें और समझदार बन जायं। यह वात में इस वातका विचार किए विना कहता हूं कि पाकिस्तानमें आजतक क्या हुआ है या आगे क्या हो सकता है।

नई दिल्ली, ६-११-'४७

: ४६ :

अहिंसा उनका क्षेत्र नहीं

एक अखवारी रिपोर्टमे वताया गया है कि मेजर जनरल करिअप्पाने अहिसाके वारेमे नीचे लिखी बात कही है :

"आजकी हालतोंमें हिंदुस्तानको अहिंसासे कोई फायदा नहीं होगा। सिर्फ ताकतवर फौज ही हिंदुस्तानको दुनियाके सबसे बड़े राष्ट्रोंमें जगह दिला सकती है।"

मुझे डर है कि अहिसाके वारेमे ऊपरकी बात कहकर वहुतसे विशेषज्ञोकी तरह जनरल करिअप्पा अपनी हदसे बाहर चले गए है और अनजानमे ही उन्होने अहिसाकी ताकतके वारेमे वड़ी गलत धारणा व्यक्त कर दी है। कुदरती तौरपर अपने क्षेत्रमे काम करते हुए उन्हे अहिसाकी ताकत और उसके कामका वहुत छिछला ज्ञान ही हो सकता है। जीवनभर अहिसापर अमल करनेके कारण मै अहिसाका माहिर होनेका दावा करता हूं, हालाकि मै वहुत अपूर्ण हूं। साफ और निश्चित शव्दोमे मै यह कहना चाहता हूं कि मै जितना ज्यादा अहिसापर अमल करता हू, उतना ही साफ मुझे यह दिखाई देता है कि मै अपने जीवनमे अहिसाको पूरी तरह उतारनेकी हालतसे कोसो दूर हूं। इस तथ्य या सचाईकी जानकारी, जो कि दुनियामे आदमीका सवसे वड़ा फर्ज है, न होनेसे ही जनरल करिअप्पाने यह कहा है कि आजके जमानेमे हिसाके सामने अहिसा कुछ नही कर सकती, लेकिन मै तो हिम्मतके साथ यह कहता हू कि इस ऐटम-वमके जमानेमे शुद्ध अहिसा ही

ऐसी ताकत है, जो हिंसाकी सारी चालोंको नीचा दिखा सकती है। जनरल करिअप्पा, जिन्हे अब फौजी साइंस और फौजी अमलके अपने जानकार ब्रिटिश उस्तादोंकी मदद नही मिल सकती, इस तरह अपनी सीमाको न लांघते तो अच्छा होता। जनरल करिअप्पासे ज्यादा बड़े-बड़े जनरलोंने काफी समझदारी और नम्रतासे साफ-साफ शब्दोंमे यह कबूल किया है कि अहिंसाकी ताकत क्या कुछ कर सकती है। इसके बारेमें उन्हें कहनेका कोई हक नहीं है। हम फौजी साइंस और फौजी अमलका भयानक दिवालियापन उसकी पैदाइशकी जगहमें ही देख रहे हैं। जो आदमी सट्टा बाजारमे जूआ खेलकर दिवालिया बना है, उसे क्या उस खास तरहके जूआकी तारीफके गीत गाने चाहिए ?

नई दिल्ली, ७-११-'४७

: ४७ :

विषमताएं दूर की जायं

[सितंबरके शुरूमें बुनियादी शिक्षा (फंडामेंटल ऐजूकेशन) के बारेमें विचार करनेवाली 'रिजनल स्टडी कान्फरेंस' चीनमें हुई थी। हिंद सरकारके प्रचार-विभागद्वारा निकाले गए बुलेटिनमें गांधीजीका कान्फरेंसको भेजा हुआ नीचे लिखा संदेश और उसकी टीका दी गई है।]

मुझे संयुक्त राष्ट्रोंके आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक

संघोंके कामोंमें गहरी दिलचस्पी है, जो शिक्षासंबंधी और सांस्कृतिक प्रयत्नोंके द्वारा शांति कायम करना चाहते हैं। मैं इस बातको पूरी तरह समझता हूं कि जबतक दुनियाके राष्ट्रोंमें आजकी शिक्षासंबंधी और सांस्कृतिक विषमताएं मौजूद रहेंगी तबतक सच्ची सुरक्षा और स्थायी शांति नहीं पैदा की जा सकती। जो कम साधनोंवाले देशोंके मुकाबले अधिक अंधेरेमें हैं, उनके दूर-से-दूरके घरोंमें भी ज्ञानका प्रकाश पहुंचाया जाय। मेरे खयालमें इस कामकी खास जिम्मेदारी उन देशोंपर है जो आर्थिक और शिक्षाके क्षेत्रमें दूसरोंसे आगे बढ़े हुए हैं। मैं आपकी कान्फरेंसकी हर तरहसे सफलता चाहता हूं और उम्मीद करता हूं कि आप सही ढंगकी शिक्षा देनेके लिए अमलमें लाई जा सकनेवाली कोई ऐसी योजना बना सकेंगे जिससे खासकर उन देशोंमें शिक्षा दी जा सके, जहां माली और दूसरी कमियोंकी वजहसे शिक्षाके कम सुभीते हैं।"

[ऊपरके संदेशपर टीका करते हुए बुलेटिनमें कहा गया है: "गांधीजीके संदेशका बड़ी इज्जत और श्रद्धासे स्वागत किया गया और उसके पढ़े जानेके वक्त कान्फरेंसमें इकट्ठे हुए सारे लोग खड़े रहे। कान्फरेंसने गांधीजीको उनके प्रेरणा देनेवाले संदेशके लिए धन्यवाद और तारीफका खत भेजा था।"]

नई दिल्ली, ७-११-'४७

: ४८ :

जब आशीर्वाद शाप बन जाता है

आशीर्वाद देनेसे इन्कार करते हुए मैंने एक दोस्तको नीचे लिखी बातें कही थीं

"एक साहसभरा योग्य काम शुरू करनेकी इच्छा रखनेवाले किसी भी व्यक्तिको किसीका आशीर्वाद लेनेकी इच्छा कभी नहीं करनी चाहिए, देशके बड़े-से-बड़े आदमीके आशीर्वादकी भी नहीं। एक योग्य काम अपना आशीर्वाद अपने साथ ही लेकर चलता है। दूसरी तरफ अगर किसी अयोग्य कामको बाहरसे कोई आशीर्वाद मिलता है तो वह शाप बन जाता है, जैसा कि उसे बनना चाहिए। सचमुच, मैं इस नतीजेपर पहुंचा हूं कि बाहरी आशीर्वाद, किसीके कामकी एक-सी प्रगतिमें बाधक होता है; क्योंकि वह काम करनेवालेके दिलमें गलत आशा पैदा करता है और कामकी सफलताके लिए जिस मेहनत और चौकन्नेपनकी जरूरत है, उससे उसे दूर हटा देता है।"

अगरचे मैंने बहुतसे लोगोंसे अक्सर कुछ ऐसी ही बात कही है, फिर भी इस सोच-विचारकर तय की गई रायको उन लोगोंके फायदेके लिए यहां फिरसे दे देना अच्छा समझता हू, जो अपने कामोंके लिए आशीर्वाद मागते रहते है। इसी तरह मुझे महान् व्यक्तियोंके स्मारकोंको आशीर्वाद देनेके लिए कहा गया है और मुझे लाचार होकर करीब-करीब वही जवाब देना पडा है, जिसकी चर्चा ऊपर की गई है।

नई दिल्ली, ११-११-'४७

: ४६ :

कुरुक्षेत्रके निराश्रितोंसे[1]

मै नही जानता कि आजकी मेरी वात सिर्फ आप लोग ही सुन रहे है या दूसरे भी सुन रहे है। हालाकि मै ब्राडकास्ट-भवनसे बोल रहा हू, लेकिन इस तरहकी चर्चामे मुझे दिल-चस्पी नही है। दु खियोके साथ दु.ख उठाना और उनके दु खोको दूर करना ही हमेशा मेरे जीवनका काम रहा है। इसलिए मुझे आशा है कि मेरे इस भाषणको आप लोग इसी नजरसे देखेगे।

जब मैने यह सुना कि कुरुक्षेत्रमे दो लाखसे ऊपर निराश्रित आ गए है और उनकी तादाद बढती ही जा रही है तो मुझे बडा दु ख हुआ। यह खबर सुनते ही मेरी इच्छा हुई कि मै आप लोगोसे आकर मिलू। लेकिन मै एकदम दिल्ली नही छोड सकता था, क्योकि यहा काग्रेस वर्किग कमेटीकी वैठके हो रही थी और उनमे मेरा हाजिर रहना जरूरी था। श्री घनश्यामदास बिडलाने सुझाया कि मै आपको रेडियोपर सदेश दू। इसलिए आपसे आज यह चर्चा कर रहा हूं।

दो दिन पहले अचानक जनरल नाथूसिह, जिन्होने कुरुक्षेत्र-छावनीकी व्यवस्था की है, मुझसे मिलने आए और उन्होने मुझे आप लोगोकी मुसीवते कह सुनाई। केद्रीय सरकारने फौजको आपकी छावनीका बंदोबस्त अपने हाथमे

---

[1] दिवाली के दिन आलइंडिया रेडियो से दिया गया भाषण।

लेनेके वास्ते इसलिए नही कहा कि वह आपको किसी तरह दबाना चाहती है। उसने ऐसा सिर्फ इसलिए किया कि फौजके लोग छावनीका बंदोबस्त करनेके आदी होते है और वे होशियारीसे यह सब करना जानते है।

जो दु.ख उठाते है, वे अपने दु.खोको सबसे ज्यादा जानते है। आपकी छावनी कोई मामूली नही है, जहा हर आदमी एक-दूसरेको जान सके। आपकी छावनी एक शहर है और अपने साथी निराश्रितोसे आपका सबध सिर्फ दु ख-दर्दके जरिए ही है। आप सब एकसे दुःखी है।

मुझे यह जानकर दु ख हुआ कि छावनीके अधिकारियो या अपने पड़ोसियोके साथ आपका वह सहयोग नही है, जो छावनी-के जीवनको कामयाब बनानेके लिए आपको करना चाहिए। मै आपके दोषोंकी तरफ आपका ध्यान खीचकर आपकी सबसे अच्छी सेवा कर सकता हूं। वही मेरे जीवनका मंत्र रहा है, क्योंकि उसीमे सच्ची दोस्ती समाई हुई है। और मेरी सेवा सिर्फ आपके या हिदुस्तानके लिए नही है, वह तो सारी दुनियाके लिए है, क्योंकि मै जाति या धर्मकी सीमाओको नही मानता। अगर आप अपने दोषोको दूर कर दे तो आप अपने आपको ही नही, बल्कि सारे हिदुस्तानको फायदा पहुंचाएगे।

यह जानकर मेरे दिलको चोट पहुचती है कि आपमेसे बहुतोके पास रहनेको जगह नही है। यह सच्ची कठिनाई और मुसीबत है—खासकर पजाबकी कड़ी ठडमे, जो दिनोदिन बढती जा रही है। आपकी सरकार आपको आराम पहुंचानेकी भरसक कोशिश कर रही है। बेशक, आपके

प्रधान मंत्रीपर इसका सबसे बडा बोझ है। राजकुमारी और डॉ० जीवराज मेहताके मातहत सरकारका स्वास्थ्य-विभाग भी आप लोगोंकी मुसीबतोको कम करनेके लिए कड़ी मेहनत कर रहा है। इस सकटमे दूसरी कोई भी सरकार इससे अच्छा काम नही कर सकती थी। आपकी मुसीबतों और विपदाओंकी कोई हद नही है और सरकारकी तो अपनी सीमाए है ही। लेकिन आपको चाहिए कि आप अपने दु.ख-दर्दका जितनी हिम्मत, धीरज और खुशीसे सामना कर सके, करे।

आज दीवाली है; लेकिन आज आप या दूसरे कोई रोशनी नही कर सकते। आज खुशी मनानेका समय नही है। हमारी सबसे अच्छी दीवाली मनेगी आप लोगोकी सेवा करके, और तब, जब आप सब उसे अपनी छावनीमे भाई-भाई-जैसे रहकर और हर एकको अपना सगा समझकर मनाएगे। अगर आप ऐसा करेंगे तो अपनी मुसीबतोपर विजय पा लेंगे।

जनरल साहबने मुझे बताया कि छावनीमे आज भी कौन-कौन-सी बातोकी जरूरत है। उन्होने मुझसे कहा कि अब वहा ज्यादा निराश्रित न भेजे जायं। ऐसा मालूम होता है मानों निराश्रितोको ठीक तरीकेसे अलग-अलग जगहोमें बाटा नही जाता। यह समझमे नही आता कि वे वहा क्यों आते है और मुकामी अधिकारियोको पहलेसे जताए बिना अलग-अलग जगहोमे इतनी बड़ी तादादमे क्यो इकट्ठे कर दिए जाते है ? कल शामको मैने प्रार्थनाके बादके अपने भाषणमें ऐसी हालत पैदा करनेके लिए पूरवी पंजावकी सरकारकी टीका की थी। मुझे अभी-अभी वहांकी सरकारके एक मंत्रीका

खत मिला है, जिसमे कहा गया है कि यह हमारा दोष नही है, इसके लिए केंद्रीय सरकार जिम्मेदार है।

अब केंद्रकी या सूबोंकी सारी सरकारें जनताकी सरकारें है। इसलिए एकका दूसरीपर इस तरह दोष डालना शोभा नही देता। सबको मिलकर जनताके भलेके लिए काम करना चाहिए। मैं यह सब इसलिए कहता हूं कि आप लोग भी अपनी जिम्मेदारी समझे।

आपको छावनीमे अनुशासन कायम रखनेमें मदद करनी चाहिए। छावनीकी सफाईका काम आपको अपने हाथमें ले लेना चाहिए। मै पंजाबको मार्शल लॉ के दिनोंसे अच्छी तरह जानता हूं। मैने पंजाबियोंके गुणों और दोषोंको पहचाना है। उनमेंसे एक दोष—और वह सिर्फ पंजाबियोंका ही नही है—यह है कि उन्हे समाजी आरोग्य और सफाईका बिलकुल ज्ञान नही है। इसीलिए मैंने अक्सर कहा है कि हम सबको हरिजन बन जाना चाहिए। अगर हम ऐसा करेगें तो ऊंचे उठेगे। इसलिए मै कहता हू कि आपमेसे हर एक—मर्द, औरते और बच्चे भी—अपने डाक्टरों और छावनीके अफसरोंको कुरुक्षेत्रको साफ रखनेमे मदद करें।

दूसरी बात जो मैं आपसे कहना चाहता हूं वह यह है कि आप अपना राशन बांटकर खाइए। जो कुछ आपको मिले, उसमें संतोष कीजिए। न तो अपने हिस्सेसे ज्यादा लीजिए और न ज्यादाकी मांग कीजिए। समाजी रसोड़े चलानेकी कला हमे सीखनी चाहिए। इस तरहसे भी आप एक-दूसरेकी सेवा कर सकते हैं।

मुझे इस खतरेकी तरफ भी आपका ध्यान खींचना चाहिए कि आप कहीं आलसकी रोटी खानेके आदी न बन जाएं। आपको रोटी कमानेके लिए शरीर-श्रम करना चाहिए। मुमकिन है, आप यह सोचें कि आपके लिए हर बातका इंतजाम करना सरकारका फर्ज है। सरकारका फर्ज तो है ही, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि आपका फर्ज खत्म हो जाता है। आपको सिर्फ अपने ही लिए नहीं, बल्कि दूसरोंके लिए भी जीना चाहिए। आलस हर एकको नीचे गिराता है। वह हमें इस संकटको कामयाबीसे पार करनेमें तो मदद कर ही नहीं सकता।

गोवाकी एक बहन मुझसे मिलने आई थीं। उनसे मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आपकी छावनीकी बहुत-सी औरतें कातना चाहती हैं। कोई रचनात्मक काम जो हमें मदद पहुंचाता है करनेकी इच्छा रखना अच्छी बात है। अब आप सबको राज्यपर बोझ बननेसे इन्कार कर देना चाहिए। आपको दूधमें शकरकी तरह अपने आसपासके वातावरणमें मिलकर एक हो जाना चाहिए और इस तरह आपकी सरकारपर जो बोझ आ पड़ा है, उसे हलका करनेमें मदद करनी चाहिए। सारी छावनियोंको सचमुच स्वावलंबी बनना चाहिए। लेकिन आज आपके सामने वह आदर्श रखना शायद बहुत ऊंची बात होगी। फिर भी, मैं आपसे यह जरूर कहूंगा कि आपको किसी भी कामसे नफरत नहीं करनी चाहिए। सेवाका जो कोई भी काम आपके सामने आए, उसे आपको खुशी-खुशी करना चाहिए और इस तरह कुरुक्षेत्रको आदर्श जगह बनाना चाहिए।

लोगोंने मेरी गरम कपड़ों, रजाइयों और कबलोंकी अपीलको सुनकर उदारतासे दान दिया है। सरदार पटेलकी अपीलका भी उन्होंने अच्छा स्वागत किया है। इन चीजोंमे आपका भी हिस्सा है; लेकिन अगर आप लोग आपसमें झगड़ेंगे और कुछ लोग अपनी जरूरतसे ज्यादा हिस्सा लेंगे तो आपको ही नुक्सान होगा। आज भी आप बड़ी-बड़ी मुसीबतें उठा रहे हैं, लेकिन आपके गलत कामसे वे और ज्यादा बढ़ जायगी।

अंतमें, मैं उन लोगोंमेसे नही हूं जो यह विश्वास करते हैं कि आप, जो पाकिस्तानमें अपनी जमीनें और घरबार छोड़कर यहां आ गए है, वहांसे हमेशाके लिए उखाड़ दिए गए है। न मैं यही विश्वास करता हूं कि उन मुसलमानोंके साथ ऐसा बरताव किया जायगा, जिन्हें हिंदुस्तान छोड़नेपर मजबूर किया गया है। मैं तबतक चैन नहीं लूंगा और तबतक भरसक कोशिश करता रहूंगा, जबतक सब लोग इज्जत और सलामतीके साथ लौटकर उन जगहोंमें बस नहीं जाते जहांसे वे आज निकाले गए हैं। जब तक मैं जिंदा रहूंगा तबतक इसी उद्देश्यके लिए काम करूंगा। मरे हुए लोग तो जिलाए नहीं जा सकते, लेकिन जिंदोंके लिये तो हम काम कर सकते हैं। अगर हम ऐसा नहीं करेंगे तो हिंदुस्तान और पाकिस्तानके नामपर हमेशा-के लिए कालिख पुत जायगी और उससे हम दोनों बरबाद हो जायंगे।

नई दिल्ली, १२-११-'४७

: ५० :

मानसशास्त्रीय टीका

रिचर्ड ग्रेग साहबसे तो 'हरिजन'के पढनेवाले परिचित होंगे ही। वह शांतिनिकेतनमे रहे थे और कई बरस हुए, मेरे साथ साबरमतीमे भी थे। वह मुझे लिखते है .

"मै बहुत जानता नहीं हूं, इसलिए हिचकिचाता हूं। फिर भी आपको एक विचार भेजनेका साहस करता हूं। अगर हम हिंदुस्तानके आजके जातीय लड़ाई-झगड़ोको उस विचारसे देखें तो शायद हमें लोगोंका नैतिक दोष कुछ कम नजर आएगा और आगेके लिए हमें आशा और बल भी मिलेगा।

"मेरी रायमें बहुत मुमकिन है कि यह हिंसा जातीय घृणा और अविश्वासको उतना नहीं बताती, जितना कि जनताके गुस्सेको, जो उसकी पीड़ा और उसपर सदियोसे होनेवाले जुल्मके कारण उसके दिलमें दबा पड़ा था। यह जुल्म केवल विदेशी राज्यके ही कारण न था। इसमें विदेशी आधुनिक सामाजिक, आर्थिक और माली तरीके भी शामिल थे, जो उन पुराने धार्मिक तरीकोसे बिलकुल उलटे थे जो कि जनताके स्वभावका एक अंग बन गए थे। विदेशी तरीकोसे मेरा मतलब है अंग्रेजी जमींदारी-प्रथा, अधिक सूदखोरी, भारी कर या महसूल जो वस्तुके रूपमें नहीं, बल्कि नकदीके रूपमें लिए जाते है, और दूसरे हस्तक्षेप, जो उन्होने गांववालोके उस जीवनमें किए, जिसे सब जातियां सदियोसे बिताती चली आ रही थीं।

"मनोविज्ञान हमें बताता है कि बचपनकी सख्त नाकामियां व्यक्तिके जीवनमें देरतक दबी पड़ी रहती है, चाहे उनका कारण न भी रहा हो। बादमें वह सुलगती हुई आग कभी भी कोई उत्तेजना मिलनेपर भड़क उठती है और वह गुस्सा हिंसाके रूपमें बेगुनाहोंपर निकल पड़ता है।

यहूदियोपर यूरोपमें जो जुल्म हुए हैं उनकी और दूसरे कई हिंसक कामोंकी जड़ इस तरह हम समझ सकते हैं। मैं मानता हूं कि हिंदुस्तानमें धर्मपर आधारित चुनावक्षेत्रोंने इस लड़ाई-झगड़ेका रास्ता जरूर पैदा किया, लेकिन मैं यकीन करता हूं कि जो पुराना कारण मैंने आपको बताया है, वही उस गुस्सेका सबसे बड़ा कारण है जो इस भयानक शक्तिसे आज फूट पड़ा है। ऐसा माननेसे हम समझ सकेंगे कि सब मुल्कोंके इतिहासमें जब कभी राजकी बागडोर एक हाथसे दूसरे हाथमें गई है तब क्यों हमेशा थोड़ी-बहुत खून-खराबी हुई है। जनता किसी-न-किसी जुल्मका शिकार तो होती ही है, जिसके कारण उसके दिलमें गुस्सा भरा होता है। जब ताकत एक हाथसे दूसरेके हाथमें जाती है, या कोई स्वार्थी नेता इसका नाजायज फायदा उठाते हैं तो वह गुस्सा भड़क उठता है।

"अगर मेरा विचार ठीक है तो यह मालूम होता है कि हिंदुस्तानकी जातीय नफरत और अविश्वासकी बुनियाद उतनी गहरी नहीं है, जितनी आज दिखाई देती है। इसके मानी यह भी है कि जब आप अपने लोगोंको उनके पुराने जीवनके तरीकोंपर फिर ला सकेंगे और सबसे ज्यादा जोर धर्म और छोटी संस्थाओं—यानी ग्राम-पंचायत और सम्मिलित कुटुंब—पर देंगे तो लोगोंकी शक्ति हिंसासे फिरकर इन कामोंमें लग जायगी। अगर खादीका काम शरणार्थियोंमें किया जाय तो उनकी शक्ति ऐसे ही अच्छे रास्ते लग जायगी। इस रास्ते बढ़नेमें मुझे आशा नजर आती है।

"यदि मेरे इस पत्रमें कहीं धृष्टता दिखाई दे तो क्षमा कीजिए। मैंने इस उम्मीदसे यह खत लिखा है कि बाहरका एक मामूली आदमी, सिर्फ इसलिए कि वह बाहर है, शायद आशाकी झलक देख पाए, जिसे लड़ाईकी धूल और बदहवासीमें देखना इतना आसान नहीं। जो हो, मुझे आपसे और हिंदुस्तानसे प्यार है।"

बहुतसे मानसशास्त्रियोंने मुझे मनोविज्ञानकी विद्या

सीखनेको कहा है; लेकिन समय न होनेकी वजहसे, मुझे दुःख है कि मैं ऐसा कर नही पाया। ग्रेग साहबका खत मेरी समस्या हल नही करता और न मेरे दिलमे मनोविज्ञान जाननेका जबरदस्त उत्साह ही पैदा करता है। उनकी दलीलसे मेरा मन साफ नहीं, उलटा धुंधला होता है। 'भविष्यके लिए आशा' तो मैंने कभी खोई नही और न खोनेवाला हू; क्योकि वह तो मेरे अहिंसाके अमर विश्वासमे है ही। हा, मेरे साथ यह बात जरूर हुई है कि मै पहचान गया हू कि संभवतः अहिंसा चलानेकी मेरी कलामें कोई दोप है। वास्तवमें अंग्रेजी राजके खिलाफ तीस सालकी अहिंसक लड़ाईमे हमने अहिसाको समझा नही। इसलिए जो शांति जनताने बहुत धीरजसे उस लड़ाईके दौरानमे रखी, वह भीतरकी नही, ऊपरकी ही थी। जिस वक्त अंग्रेजी राज गया, उसके दिलका गुस्सा बाहर निकला। यह कुदरती था कि वह गुस्सा जातीय लड़ाईमें फट पड़े, क्योकि उस गुस्सेको सिर्फ अंग्रेजी बंदूकोंने दबाकर रखा था। यह मेरी रायमें बिलकुल दुरुस्त और मानने योग्य है। इसमें किसी उम्मीदके टूटनेकी कोई गुजाइश नही। मेरी अहिसा चलानेकी कला नाकाम रही, तो क्या? उससे अहिसामे विश्वास थोड़े उठ सकता है? उलटे, यह जानकर कि मेरे तरीकेमें कोई दोष हो सकता है, मेरा विश्वास संभवत. और भी मजबूत हो जाता है।

नई दिल्ली, १२-११-'४७

: ५१ :

बेमेल नहीं

'हरिजन' के एक ग्राहकने मेरे सामने नीचेकी बात रखी है, जो उन्हें एक पहेली मालूम होती है। उसका मैंने नीचे लिखा जवाब भेजा है:–

"एक बार आपने यह कबूल किया है कि आपने ईश्वरको प्रत्यक्ष नहीं देखा है। और 'सत्यके मेरे अनुभव' नामकी अपनी किताबकी भूमिकामें आपने कहा है कि आपने सत्यके रूपमें भगवानको बहुत दूरसे जीता-जागता देखा है। ये दोनों बातें बेमेल मालूम होती हैं। इन दोनोंको मैं ठीक-ठीक समझ सकूं, इसलिए विस्तारसे समझानेकी मेहरबानी कीजिए।"

ईश्वरको आखोंसे प्रत्यक्ष देखनेमे और उसे बडी दूरसे सत्यके रूपमें जीता-जागता देखनेमे बहुत बडा अंतर है। मेरी रायमें ऊपरकी दोनों बाते एक दूसरीकी विरोधी नही हैं, बल्कि उनमेसे हर एक दूसरीको समझाती है। हम हिमालयको बहुत दूरसे देखते है और जब हम उसकी चोटीपर होते है तो हम उसे प्रत्यक्ष देखते है। लाखों आदमी हिमालयको सैकडो मील दूरसे देख सकते हैं, बशर्ते कि वह दिखाई देनेवाली दूरीके भीतर हो। लेकिन बरसोंकी मुसीबतोंके बाद उसकी चोटीपर पहुंचकर तो थोड़े ही लोग उसे प्रत्यक्ष देखते हैं। इसे 'हरिजन'के कॉलमोंमे विस्तारसे समझानेकी जरूरत नही मालूम होती। फिर भी, मै आपका खत और मेरा जवाब 'हरिजन'मे छपानेके लिए भेजता हूं, ताकि आपके बताए हुए

दोनो बयानोमे आपकी तरह किसीको विरोध मालूम होता हो तो उसकी उलझन दूर हो जाय।

नई दिल्ली, १३-११-'४७

: ५२ :

अंकुश

मुझे तो यह साफ नजर आता जा रहा है कि खुराक, कपड़े वगैरहपर जो अंकुश रखा गया है, वह गलत है। मेरे इस विचारके समर्थनमे मेरे पास खत और तार आते रहते है।

इसके विरोधमे ऐसे लोग है जो अपने आपको इस विषयके विशेषज्ञ मानते है। इसलिए वे लोग पडिताईभरे लेख लिखते है। उनमे पुरानी विदेशी सरकारके नौकर भी है। इनमेसे इरादतन किसीकी उपेक्षा करनेकी मेरी जरा भी इच्छा नही है। फिर भी अगर उनकी बातको आंख मूंदकर न माननेमें ही उनकी उपेक्षा होती हो तो मै लाचार हूं। सूरजकी गर्मीमे तपता हुआ कोई आदमी किसी छांहमे रहनेवाले पडितकी यह बात कैसे मान सकता है कि सूरजकी गर्मी, गर्मी नही है और जो आदमी तप रहा है, वह भ्रममे है? यही हालत मेरी है।

विशेषज्ञ और सरकारी नौकर सच्चे दिलसे मानते है कि हमारे देशमे पूरा अनाज नही है। मै इससे उलटा मानता हूं और साथ ही यह कहता हूं कि अगर देशमे अनाजकी कमी हो तो वह बहुतसे आदमियोंकी थोडी-सी कोशिशसे दूर की जा सकती

है। लोग आलसी बन बैठें या धोखा ही देते रहें, और इस आलस और धोखेकी वजहसे मरें तो उसमें हुकूमत क्या करे ? हुकूमत आलस मिटानेके उपाय सोचे, धोखा दूर करनेकी कोशिश करे, न कि आलसियों और दगाबाजोंके लिए चाहे जैसे, चाहे जहांसे, अनाज लाकर उन्हें दे और इस तरह उनकी दगाबाजी और आलसको बढ़ाए।

मगर मैं कोई लेख लिखने नहीं बैठा हूं। गुजरातके लोग व्यापार करना जानते हैं। गुजरातमें चतुर किसान है। वहांकी मिट्टी अच्छी है। पानी भी वहां काफी है। उन लोगोंका क्या खयाल है ? क्या यह बात सही है कि आलस और धोखा अनाजकी कमीका आभास कराते हैं ? अगर न हो तो बंबईमें अंकुश किसलिए है ? अगर आलस और धोखा काम कर रहे हैं तो वे क्यों दूर नहीं होते ? गुजरात ही नहीं, पूरे बंबई इलाकेके किसान और व्यापारी मिलकर क्यों नहीं बताते कि उनके यहां अनाज और कपड़ेकी कमी नहीं है, और अगर हो तो वह तुरंत दूर हो सकती है ? क्या वे इतना नहीं कर सकते ?

नई दिल्ली, १७-११-'४७

: ५३ :

गुरु नानकका जन्म-दिन

मुझे डर है कि मैं जो कुछ कहना चाहता हूं, वह सब नहीं कह सकूंगा। मेरी उम्मीद थी कि आपने फौजी तालीम ली है,

इसलिए आप शांति रखेंगे। यहां बहनें बहुत आवाज कर रही हैं। कुछ बरस पहले जब मैं अमृतसर गया था तो वहां भी ऐसा ही हुआ था। दुःखकी बात है कि बहनोंतक वह तालीम नहीं पहुंची। यह मर्दोंका गुनाह है।

मैं जब यहां आ रहा था तो मैंने रास्तेमें केले व संतरेके छिलके इधर-उधर पड़े देखे। उनसे जगह ही गंदी नहीं हुई थी, बल्कि उसपर चलना भी खतरनाक हो गया था। अपने घरोंके फर्शोंकी तरह ही हमें सड़कोंको साफ रखना चाहिए। मैंने देखा है कि कूड़ेदान नहीं होता तो अनुशासन-प्रिय लोग छिलकोंको कागजमें बांधकर थोड़ी देरको जेबमें डाल लेते हैं और फिर नियत स्थानपर फेंक देते हैं। अगर लोगोंने सामाजिक आचार-विचारके नियम सीख लिए हैं तो उनका कर्त्तव्य है कि उन्हें स्त्रियोंको भी सिखावें।

आज दस बजे मेरे पास बाबा बचित्तरसिंह आए थे। उन्होंने कहा कि आज 'गुरु नानकका जन्म-दिन है[1]। उसमें शामिल होनेके लिए आपको निमंत्रण देनेको सिक्खोंकी तरफसे मुझे भेजा गया है। उन्होंने यह भी बताया कि सभामें एक लाखसे ऊपर स्त्री-पुरुष इकट्ठे होंगे, जिनमेंसे अधिकतर पश्चिमी पाकिस्तानके दुःखी हैं। मैंने कहा कि मुझको क्यों ले जाते हैं? सिक्ख आज मुझे दुश्मन मानते हैं। फिर भी उन्होंने कहा कि आपको आना ही होगा और जो कुछ कहना चाहते हैं, कह सकते हैं। मैंने कहा कि सभामें दो-एक बात कहूंगा।

---

[1] कार्त्तिक पूर्णिमा।

माता बालकको कडवी दवा पिलाती है। यह बच्चेको अच्छा नहीं लगता, फिर भी माता पिलाती है। मुझे मेरी मां इसी तरह कड़वी दवा देती थी, फिर भी मैं उसकी गोदमे छिप जाता था। मैंने सिक्खोंको जो कुछ कहा है, उसमेसे एक भी शब्द वापस नही लेना चाहता हूं; क्योंकि मैं तो आपका सेवक हू, भाई हूं।

मेरे साथ सर दातारसिहकी लडकी है। उनका कितना नुकसान हुआ है? वह ताराज (बरबाद) हो गए है, फिर भी आंसू नहीं गिराते है। यह देखकर मुझे आनंद होता है। वह मुसलमानोंको दुश्मन नही मानते है। कहा जाता है कि एक सिक्ख सवा लाखके बराबर है। सवा लाख सिक्खोंके बीचमे मुट्ठीभर मुसलमान नही रह सकते क्या? मुझसे पूछो तो मै कहूगा कि झगड़ा शुरू तो पाकिस्तानने किया है, लेकिन पूर्वी पजाबमें हिदुओ और सिक्खोंने कुछ कम नही किया। हिंदू, सिक्खों-जैसे बहादुर नही है। सिक्खोने तो तलवार चलाना सीखा है। हिदुओको यह तालीम नही मिली।

आप देखते है कि शेख अब्दुल्ला मेरे साथ है। मैंने तो कहा था कि वे कैसे यहा आ सकते है? आज तो मुसलमान सिक्खों और हिदुओंके दुश्मन हो गए है। मगर बाबाने कहा कि वह तो सच्चे शेरे-काश्मीर है। उन्होंने बड़ा भारी काम किया है। काश्मीरमे सब मिल-जुलकर रहते है। सिक्ख उन्हे मानते है। जम्मूमें हिदुओ और सिक्खोंने मुसलमानोको कतल किया है, फिर भी शेख अब्दुल्ला जम्मू चले गए। आजके शुभ दिन आपने मुझे और शेख साहबको आदरपूर्वक बुलाया, इसकी मुझे खुशी है।

आजसे आप जिदगीका नया पन्ना शुरू करे तब तो मेरे-

जैसा आदमी जिंदा रह सकता है। आज भी मुसलमानोंको दिल्लीसे भगानेकी कोशिश चल रही है। मैंने आते समय चांदनी चौकमें एक भी मुसलमानको नहीं देखा। यह हम सबके लिए शर्मकी बात है। मुसलमानोंकी तादाद छोटी-सी है। उनको हलाल करना गुनाह है। अगर कोई मुसलमान बेवफा हो तो हुकूमत उससे लड़ेगी, उसे मारेगी। मगर हम क्यों कानून अपने हाथमें लें? आज हम बेगुनाहोंको मारनेके लिए तैयार हो जाते हैं। ऐसा करके आप कृपाण और सिक्ख धर्मको शरमिंदा करते हैं। इसलिए आजसे आप जिंदगी-का नया पन्ना शुरू करें। मैं रावलपिंडी गया था। वहां क्या-क्या हुआ, सब जानता हूं। उसे कभी भूल नहीं सकता। आप लोग पश्चिमी पंजाबसे दु:खी होकर आए हैं, यह मैं समझ सकता हूं, लेकिन हम गुस्सा करके क्या करेंगे? बदला लेनेवाली हमारी हुकूमत तो है ही। गुरु गोविंदसिंहने बेगुनाहोंपर कभी तलवार नहीं चलाई थी। उनके साथ मुसलमान भी रहते थे। गुरु नानकने जो सिखाया है, उसकी हम आज अवगणना कर रहे हैं। नाच-रंगसे धर्मको लजाते हैं। हिंदू, सिक्ख, ईसाई, अंग्रेज कोई भी गुनाह करे तो मुझे चुभता है और मुझे लगता है कि मैं गुनाह करता हूं। मेरी तो आपसे यही प्रार्थना है कि आप अपने दिलोंको साफ करें और अपनी तलवारको म्यानमें रख दें। कोई बदमाशी करे तो हुकूमत उसे देख लेगी। गुरु ग्रन्थ-साहबसे मैं यही अर्ज करता हूं कि वह हर एक सिक्खका दिल साफ बनावे, ताकि वे गुनाहका बदला गुनाहसे न लें।

: ५४ :

आशाकी झलक

जब हर तरफसे निराशा-ही-निराशा होने लगती है तो जब-तब आशाकी किरण भी दिखाई दे जाती है। इस आशाका स्रोत है 'हरिजन' संबंधी मेरे पत्र-व्यवहारकी फाइल, जो खाली समयमें मेरे पढ़नेके लिए सुरक्षित रखी गई है।

बोचासन रेजीडेंशियल स्कूलके शिवभाई पटेलका एक पत्र ऐसा ही है। वार्षिक उत्सवोंमें जितना काम उन्होंने किया है उसीका खुलासा इस पत्रमें है। आजकल हरिजन-आश्रम कहे जानेवाले पहलेके साबरमती सत्याग्रह-आश्रमकी गंगाबहनने और परम उद्योगी रविशंकर महाराजने अपने साथ ही रहनेवाले दो पुत्रोंके सहयोगसे उन्हें बड़ी सहायता पहुंचाई है। हालहीमें जो जलसा हुआ था, उसमें एक विशेषता यह थी कि हमेशाकी तरह पैरसे चलनेवाली धुनाई-मशीनकी पूनियां काममें न लाकर इस बार तुनाई-पद्धतिका ही कार्यक्रम चला। इसी मौकेपर व्यवस्थापकोंने वहांके पिछड़े हुए लोगोंके बच्चोंके लिए जो छात्रालय बनवानेका निश्चय किया था, वह बन गया है और उसमें दस छात्रोंको दाखिल करके कार्यका श्रीगणेश कर दिया गया है। सात साल बाद उन्हे सामान्य स्कूलोंके चारों दर्जे पास छात्रोंके लिए दिनका स्कूल खोलनेकी आज्ञा दी गई है। उन्हें आशा है कि अगले छः वर्षोंमें वे दर्जोंकी संख्या दसतक कर देंगे और अंग्रेजीके बजाय खादी, बढ़ईगिरी और कृषि-विज्ञानकी पढ़ाईकी व्यवस्था भी करेंगे। पिछले

वर्षोंके बावजूद इस साल विद्यार्थियोके अभिभावकोको अपने लड़कोके चरित्र-निर्माणमे रस आने लगा है। नतीजा यह हुआ है कि पिछले अक्तूबरवाले जलसेके बाद चार महीनोंके अंदर ही खूब सिगरेट फूकनेवाले और तेज चाय पीनेवाले लडकोंने अपनी ये आदते छोड़ दी। लड़कोंके सुधारसे प्रभावित होकर उनके संरक्षकोने भी मुहसे चिमनियोंकी तरह धुआं उगलनेवाली और पाचन-शक्तिको खराब कर देने-वाली अपनी लत छोड़ दी ह। पहले जब लड़कोंको स्कूलमे भर्ती किया गया था तब वे न तो सीध बैठ सकते थे और न पांच मिनटके लिए चुप ही रह सकते थे। अब उन्हे एक घटेतक शांत होकर हाथसे सूत कातना रुचता है। संस्थाकी गोशालाकी देखभाल गगाबहन करती है और सबको दूध मिल जाय इसका ध्यान रखती है।

उत्सवके दिनोंमे विद्यार्थी अच्छे-अच्छे संवाद करते थे जिन्हे सुननेके लिए काफी लोग इकट्ठे होते थे। लड़कोने विना किसी हिचकके खादीकी शक्लमे आनेसे पहलेकी रुईकी सभी क्रियाओंका प्रदर्शन किया। तेईस विद्यार्थियोंने खुशखत लिखाईकी प्रतियोगितामे भाग लिया जब कि इस विषयको ऐसी अवहेलनाकी दृष्टिसे देखा जाता है कि मानो खुशखत लिखाईका अच्छी शिक्षामें कोई स्थान ही नही है।

नई दिल्ली, २२-११-'४७

: ५५ :

जैसा सोचो वैसा ही करो

राजकुमारीने डॉ० माड़ रॉयडन द्वारा उनके पास भेजा गया एक खत मुझे पढ़नेके लिए दिया है। उस खतका संगत अंश मैं यहां देता हूं :

"यह देखकर मुझे सचमुच बड़ा अचरज होता है कि दुनियाका सबसे बड़ा ईसाई, ईसाई संप्रदायमेंसे नहीं है। पिछले दो-तीन हफ्तोंसे मैं नया लिखा हुआ आलबर्ट स्विट्जरका जीवन-चरित पढ़ रहा हूं। उसमें भी मुझे ऊपर बताया हुआ विरोध नजर आता है। हिंदुस्तानमें लोग स्विट्जरके नामसे परिचित हैं या नहीं, मैं नहीं जानता। मगर मुझे खुदको लगता है कि अपनी महत्तामें आज वह दुनियामें बेजोड़ है। आप शायद जानते होंगे कि 'सनातनी' ईसाई स्विट्जरको शककी नजरसे देखते हैं, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि हमारा उद्धार करनेवाले ईसामसीहके बारेमें उसका जितना चाहिए उतना ऊंचा खयाल नहीं है। और फिर भी आप मेरी बात मानें कि आज सारी दुनियामें ऐसा ईसाई नहीं है, जो स्विट्जर-जैसी हिम्मत-भरी अडिग श्रद्धासे और पूरी-पूरी समर्पणकी भावनासे ईसामसीहका अनुसरण करता हो। फिर मैंने स्विट्जरकी फिलासफी पढ़ी, 'जीवनके बारेमें उसका पूज्य भाव' देखा और नाजारेथके यीशुके बारेमें उसके द्वारा हमेशा किए गए उल्लेखको पढ़ा। तब मुझे यकीन हो गया कि स्विट्जरने अपने पाठकोंके दिलोंमें ईशुकी जितनी ऊंची जगह दी है, उतनी किसी दूसरेने नहीं दी। दूसरे दार्शनिकों और स्विट्जरमें सिर्फ इतना ही फर्क है कि स्विट्जर जो कुछ विचार करता है, लिखता है, या कहता है, उसपर अपने जीवनमें अमल किए बिना नहीं रहता; बल्कि वह विचार ही इस तरह करता है कि उसपर उसे अमल करना है।

अब मेरी समझमें आया कि क्यों उसके विचार, पाठकोंके मनपर अपनी कठोर और भयजनक प्रामाणिकताकी छाप डालते हैं। अमल करनेका खयाल रखे बगैर अगर आप विचार करते रहें तो सब किस्मकी झूठी बातोंका विचार करना आसान हो जाता है। अगर आपको पहलेसे ही इस बातका भान हो कि जो विचार आप करते हैं, उसपर आपको जीवनमें अमल करना है तो खयाल कीजिए कि कैसी बारीकीसे और कितने सच्चे दिलसे आप विचार करेंगे!"

नई दिल्ली, २२-११-'४७

: ५६ :

बहादुरी या बुज़दिलीकी मौत

एक बंगाली दोस्तने पूर्वी पाकिस्तानसे हिंदुओंके हिजरत करनेपर बंगालीमें एक लंबा खत लिखा है। उसका सार यह है कि अगरचे उन-जैसे कार्यकर्त्ता मेरी दलीलको समझते और उसकी तारीफ करते हैं, और साथ ही बहादुरी और बुजदिलीकी मौतके फर्कको भी समझते हैं, मगर मामूली आदमीको मेरे बयानमें हिजरत करनेकी ही सलाह नजर आती है। वह कहता है—

"अगर हर हालतमें मौतसे ही पाला पड़ना है तो धीरज रखनेकी कोई कीमत नहीं रह जाती; क्योंकि इन्सान मौतसे बचनेके लिए ही जीता है।"

इस दलीलमें उस बातको पहलेसे ही मान लिया गया है,

जिसे साबित करना है। इन्सान सिर्फ मौतसे बचनेके लिए ही नही जीता। अगर वह ऐसा करता है तो मेरी सलाह हं कि वह ऐसा न करे। उसे मेरी सलाह है कि अगर वह ज्यादा न कर सके तो कम-से-कम मौत और जिंदगी दोनोंको प्यार करना सीखे। कोई कह सकता है कि यह एक मुश्किल बात है और इसपर अमल करना और भी मुश्किल है। मगर हर उचित और महान् काम मुश्किल तो होता ही है। ऊपर उठना हमेशा मुश्किल होता है। नीचे गिरना आसान है और उसमे अक्सर फिसलन होती है। जिदगी वहीतक जीने लायक होती है, जहांतक मौतको दुश्मन नही, बल्कि दोस्त माना जाता ह। जिदगीके लालचोंको जीतनेके लिए मौतकी मदद लीजिए। मौतको टालनेके लिए एक बुजदिल आदमी अपनी इज्जत, अपनी औरत, अपनी लड़की, सब कुछ सौप देता है और एक हिम्मतवर आदमी अपनी इज्जत खोनेके बजाय मौतसे भेटना ज्यादा पसंद करता है। जब समय आएगा, जो कि आ सकता है, तब मै अपनी सलाहको लोगोंकी कल्पनाके लिए नही छोड़ूंगा, बल्कि क्रियाकी भाषामे उसे करके दिखा दूंगा। आज अगर सिर्फ एक या दो ही आदमी मेरी सलाहपर चलते है या कोई भी नही चलते तो इससे उसकी कीमत घट नही जाती। शुरुआत हमेशा कुछ ही लोगोसे होती है। एक आदमीसे भी शुरुआत होती है।

नई दिल्ली, २३-११-'४७

: ५७ :

नेशनल गार्ड

पूर्वी बंगालसे एक भाईने खत लिखकर मुझसे पूछा है :

"पाकिस्तानकी सरकार नेशनल गार्ड या किसी दूसरे नामसे एक स्वयंसेवक-सेना जरूर खड़ी करेगी। अगर हिंदुओंसे उसमें शामिल होनेके लिए कहा जाय तो वे क्या करें? अगर उस फौजमें सिर्फ मुसलमान ही लिए जायं तो हिंदू क्या करें?"

मौजूदा परिस्थितिमें इस सवालका जवाब देना मुश्किल है। करीब-करीब हर मुसलमानपर यूनियनमें शक किया जाता है। इसी तरह चाहे पूर्वी पाकिस्तान हो, चाहे पश्चिमी, दोनोंमें हिंदुओं और सिक्खोंको शककी नजरसे देखा जाता है। अगर उस फौजमें भर्ती होनेके लिए दिलसे बुलाया जाता है तो मेरी सलाह है कि हिंदू भर्ती हो जायं। बेशक भर्तीकी शर्तें सबके लिए एक-सी हों और किसीके धर्मके साथ कोई दस्तंदाजी न हो। और अगर उस फौजमें सिर्फ मुसलमान ही लिए गए और हिंदुओंको नहीं बुलाया गया तो आजकी परिस्थितिमें हिंदू चुपचाप बैठ जायं। कोई आंदोलन न करें और ऐसा करते हुए दिलोंमें भी गुस्सा न रखें।

नई दिल्ली, २३-११-'४७

: ५८ :

विश्वास नहीं होता

वही बगाली भाई[1] लिखते है :

"पूर्वी बंगालकी सरकारने अपने गजटमें यह हुक्म निकाला है कि जो लोग अखंड बंगालकी नीतिकी हिमायत करेंगे, उन्हें मौतकी सजा दी जायगी।"

इस बातपर विश्वास कर सकनेके पहले मै सरकारी हुक्मकी नकल देखना चाहूगा। मुझे विश्वास है कि अगर इस तरहका कोई हुक्म होगा भी तो उसके ठीक-ठीक शब्दोंका मतलब दूसरा ही होगा। मै पूर्वी बगालमे अखड बंगालकी हिमायत करनेके अपराधको समझ सकता हू। लगभग सारे हिंदू और बहुतसे मुसलमान ऐसे मिलते है जो बंटवारेके खिलाफ राय रखते है। फिर भी, कोई पागल आदमी ही एक बार हो चुके बटवारेके सामने लडनेकी हिम्मत करेगा। बंटा हुआ बगाल सिर्फ दोनों पार्टियोंकी मरजीसे ही अखंड बन सकेगा। लेकिन अगर किसीको जनताकी रायकी एकताकी तरफ बदलनेको इजाजत न दी जाय तब तो दोनों पार्टियोंकी वह मंजूरी नामुमकिन हो जायगी। ऐसा पागलपनभरा हुक्म कोई सरकार न निकालेगी।

नई दिल्ली, २३-११-'४७

[1] २३-११-'४७ के पिछले लेखमें जिनका जिक्र है।

: ५६ :

भाषावार विभाजन

आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल लिखते हैं :—

"नई-नई विद्यापीठें खोलनेके बारेमें आपका लेख 'हरिजन' में पढ़ा। मैं यह मानता हूं कि भाषावार प्रान्तोंकी रचनाके पहले नई विद्यापीठें स्थापित करनेमें कठिनाई होगी। लेकिन प्रान्तोंको भाषाके आधारपर बनानेमें कांग्रेसकी ओरसे इतनी ढिलाई क्यों हो रही है, यह मैं समझ नहीं सका हूं। कांग्रेस सन् १९२० से ही यह मानती आई है कि प्रान्तोंकी पुनर्रचना विविध-भाषाओंके अनुसार हो। लेकिन मौका आनेपर अब इस कामको लम्बानेकी या टालनेकी कोशिश की जा रही है, ऐसा मेरा ख्याल है। विधान परिषद्में भी इस विषयको स्थगित-सा कर दिया गया है। यह बात मुझे उचित नहीं जान पड़ती। बिना भाषावार प्रान्त रचना हुए न तो शिक्षाका माध्यम मातृभाषाको बनाना आसान होगा और न अंग्रेजीको राजभाषाके स्थानसे हटाना सरल होगा। बम्बई, मद्रास और मध्यप्रान्त बरार जैसे बेढंगे और बहुभाषी प्रान्तोंका हमारे नये विधानमें स्थान ही नहीं होना चाहिए। और अगर हमने इस प्रश्नको टालनेकी कोशिश की तो एक ही प्रान्तके विभिन्न भाषा बोलनेवालोंका पारस्परिक विद्वेष अधिक बढ़ता जायगा। बहुभाषी प्रान्त रखनेसे भाषा-द्वेष कम नहीं होगा, बल्कि दिन-दिन बढ़ेगा, यह स्पष्ट है। आज देशके सामने हिन्दू-मुस्लिम समस्याने भयंकर रूप धारण किया है और हमारे नेताओंकी शक्तियां उसी ओर अधिक लगी हैं, यह ठीक है। लेकिन अगर देशका बंटवारा करना ही था तो कई साल पहले ही कर लेना था। उस हालतमें इतनी खून-खराबी न होती। इसी तरह अगर हमें प्रान्तोंका बंटवारा भाषावार करना है तो देरी करनेसे

कोई फायदा नहीं होगा। नुक़सान भी होगा, क्योंकि कटुता बढ़ती जायगी।"

फिर भी भाषावार सूबोके विभाजनमे देर होती है, उसका सबब है। उसका कारण आजका बिगड़ा हुआ वायुमंडल है। आज हरएक आदमी अपना ही देवता है, मुल्कका कोई नही। मुल्ककी ओर जानेवाले, उसका भला सोचनेवाले लोग है जरूर, लेकिन उनकी सुने कौन ? अपनी ओर खीचनेवाले लोग शोर मचाते है, इसलिए उनकी बात सब सुनते है। दुनिया ऐसी है न ?

आज भाषावार सूबोंका विभाजन करनेमे झगड़ेका डर रहता है। उडिया भाषाको ही लीजिए। उड़ीसा अलग सूबा बन गया है, फिरभी कुछ-न-कुछ खीच रही ही है। एक ओर आध्र, दूसरी ओर बिहार और तीसरी ओर बगालहै। कांग्रेस ने तो भाषावार विभाजन सन् १९२० मे किया। क़ानूनन तो उडिया बोलनेवाले सूबेका ही हुआ। मद्रासके चार विभाग कैसे हो ? बम्बईके कैसे ? आपसमे मिलकर सब सूबे आवे और अपनी हद बना लें तो कानूनके अनुसार विभाग आज बन सकते है। आज हुकूमत यह बोझ उठा सकती है ? कांग्रेसकी जो ताकत १९२० मे थी, वह आज है ? आज उसकी चलती है ?

आज तो दूसरे हकदार भी पैदा हो गए है। ऐसे मौकेपर हिन्दुस्तान बेहाल-सा लगता है। आज तो सघ (मेल) के बदले कुसघ (फूट) है, उन्नति के बदले अवनति है, जीवनके बदले मौत है। जब कौमी झगड़े बद होगे तब हम समझ

सकेंगे कि सब ठीक हुआ है। ऐसी हालतमे भाषावार विभाजन लोग आपसमे मिलकर कर ले तो कानून आसान होगा, अन्यथा शायद नही।

नई दिल्ली. २४-११-'४७

: ६० :

इसमें तुलना कैसी ?

एक वजीरने कुछ दिनो पहले मुझसे पूछा था :

"कई बार मैंने सुना है कि धर्म और धर्माभिमान और स्वदेशाभिमानकी तुलना करें तो स्वदेशाभिमान ऊंचा ठहरता है। क्या आप इसे मानते है ?"

मैंने जवाब दिया, "मै नही मानता। एक ही जातिकी चीजोंके बीच तुलना की जा सकती है। अलग-अलग जातिकी चीजोंकी तुलना करना असभव है। हर चीज अपनी जगहपर रहते हुए दूसरी चीजोके बराबर ही कीमत रखती है। इन्सानको अपना धर्म और अपना देश दोनों प्यारे हैं। वह एकको देकर दूसरा नही लेगा। उसे दोनों एकसे प्रिय है। वह रावणकी चीज रावणको देगा और रामकी रामको। अगर रावण अपनी मर्यादा तोड़ दे तो रामका भक्त दूसर रावणको ढूढने नही जायगा। मगर वह मर्यादाको तोड़नेवाले रावणसे ही निपट लेगा।"

इस किस्मकी मुश्किलोंके बारेमे मुझे सत्याग्रह-जैसा अमूल्य शस्त्र मिला। एक मिसाल लीजिए। मान लीजिए कि

एक आदमीकी मां जिंदा है, औरत जिंदा है और उसकी एक लड़की है। अपनी-अपनी जगहपर ये तीनों उसे एक जैसी ही प्यारी होनी चाहिए। जब कोई कहता है कि अपनी औरतके खातिर इन्सान अपनी माको और लड़कीको छोड़ सकता है तब मुझे यह जगली भूल मालूम पड़ती है। इससे उलटा भी वह नही कर सकता। अपनी मां या लड़कीके लिए औरतको भी वह नहीं छोड़ेगा। और मान लीजिए कि तीनो-मेंसे एक भी अपनी मर्यादा छोड़ती है तो तीनो शक्तियोके बीचमें संतुलन बनाए रखनेके लिए वह सत्याग्रहकी नीतिका उपयोग करेगा।

नई दिल्ली, २९–११–'४७

: ६१ :

हिम्मत न हारिए

मैडम ऐडमंड प्रिवेटके २७ अगस्त, १९४७ के पत्रका नीचेका हिस्सा यहां दिया जाता है :

"आज मुझे लगता है कि मै आपको यह बता दूं कि हिंदुस्तानकी पिछली महान् घटनाओका हमपर कैसा गहरा असर हुआ है। यहां मेरा मतलब हिंदुस्तानकी आजादीसे और उसपर हमें होनेवाले आनंदसे है।

"हां, हम जानते है कि आपको हिदुस्तानके आजादी मिलजानेसे कोई खुशी नहीं हुई। हमने इस बारेमें आपका लेख 'हरिजन' में पढ़ा है; लेकिन

बापू ! आप हिम्मत न हारिए। सोचिए, जरूर सोचिए कि हम पश्चिम-वालोंके लिए उसका क्या महत्त्व है। हिंदुस्तानने अपने विरोधीका खून बहाए बिना यह क्रांति की और वह आजाद हो गया। भूतकालसे मुकाबला करनेपर यह क्रांतिकारी घटना जबरदस्त तरक्की मालूम होती है। हिंदुस्तानकी यह कामयाबी इतनी ऊंची है कि इतिहासमें इतने बड़े पैमानेपर उसकी कहीं मिसाल नहीं मिलती।

"ओ बापू ! क्या खूनकी भयानक होली खेलकर हाल ही बाहर निकलनेवाले यूरोपके हम लोगोंके खातिर आप यह नहीं देख सकते कि हिंदुस्तानका नया प्रभात हमें कितना चमकीला, कितना लुभावना और कितना अलौकिक मालूम होता है ?

"ओ हमारी अनोखी आशाके प्रतीक बापू ! आप हमारी खुशीसे धीरज रखिए, हिम्मत बांधिए और दृढ़ बनिए। हम आपको सिर्फ अपना आध्यात्मिक नेता ही नहीं मानते, बल्कि ऐसे आदमीका जीता-जागता उदाहरण समझते हैं, जिसने समतोल या प्रसन्नता खोए बिना रोजाना जिंदगीमें अपने विश्वासपर पूरी तरह अमल किया है। क्या आपने ही हमें अपने धर्मका यह कीमती संदेश नहीं दिया है कि फलकी आशा रखे बिना पूरे दिलसे अपना काम करो और बाकी सब भगवानके भरोसे छोड़ दो ? आपने जो कुछ किया, अपनी पूरी श्रद्धा और हिम्मतके साथ किया। अब भगवान हमें यह दिखाता है कि अहिंसासे, जो अनोखी आशाकी जननी और हमारी सभ्यताको बरबादीसे बचानेका एकमात्र साधन है, क्या-क्या हासिल किया जा सकता है। शायद आपकी दलील यह है कि हिंदुस्तानकी आजादीकी लड़ाईमें जिस अहिंसाका उपयोग किया गया, वह हमेशा पूर्ण नहीं थी; लेकिन इतना तो मुझे पक्का विश्वास है कि आपसे प्रेरणा पाए हुए आपके भले लोगोंने इसके लिए ईमानदारीसे कोशिश जरूर की।

"हम आशा रखें कि हम आपके इस संदेशके लायक साबित होंगे और अपने यहां उसका पूरा-पूरा उपयोग करेंगे।

"यह सच है कि यहांके बहुत थोड़े लोग उसके सच्चे अर्थको समझते हैं, लेकिन उसके लिए वातावरण यहां तैयार है।

"हम दिलमें हिम्मत रखकर और भगवानमें भरोसा रखकर काम करें!

"२७ जुलाई, १९४७के 'हरिजन' में छपा आपका लेख, जिसका मैंने इस खतके शुरूमें जिक्र किया है, एडमंडद्वारा किया तरजुमा अगले 'एसोर'में छापा जा रहा है। (सच पूछा जाय तो यह पूरा अंक ही हिंदुस्तानके बारेमें है।)

"मुझे खुशी है कि 'एसोर'के पाठकोंको एक बार फिर आपका वह दृष्टिकोण जाननेको मिलेगा, जिसपर आपने जोर दिया है। एक बार फिर उनका ध्यान मंद विरोध और अहिंसाके बुनियादी भेदकी तरफ तत्परतासे खिंचेगा।

"इसके बारेमें मैं जितना सोचती हूं, उतना ही मेरा यह पक्का विश्वास होता जाता है कि लोग इस भेदको नहीं समझते—नही समझ सकते। वे मंद विरोधका इस्तेमाल करते है, पर कामयाबी न मिलनेपर निराश हो जाते हैं, हालांकि वे अपनी कोशिशमें पूरे ईमानदार रहते होंगे।

"अक्सर हकीकत यह होती है कि लोग अनजानमें अपने आपसे झूठ बोलते हैं।

"इसलिए पिछले कुछ दिनोंसे मैं मनोवैज्ञानिक विश्लेषणकी थोड़ी जानकारी पानेकी कोशिश कर रही हूं। पहले लोग कहा करते थे कि शैतान हमारे दिलमें बैठकर हमें बुरे रास्ते ले जानेका जो खेल खेला करता

हैं, उससे हमें सावधान रहना चाहिए।

"आजकल लोग सचाईतक पहुंचनेके लिए ज्यादा वैज्ञानिक तरीके चाहते है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषणकी विद्या दिमागी बीमारियोंके रोगियोको अच्छा करनेका उपाय तो है ही। साथ ही, वह मामूली लोगोंकी मानसिक उलझनोंको भी दूर करनेमें मददगार हो सकती है। इस तरह लोग ज्यादा जाग्रत बनते है और यह जागृति, ईमानदारीसे कोशिश करनेपर उन्हें अहिंसाका सच्चा उपयोग करने लायक बनाती है।"

मं देखता हू कि आप मद विरोध और अहिसक विरोधका बुनियादी फर्क समझ गई है। विरोध दोनों ही रूपोमे है, मगर जब आपका विरोध मंद विरोध होता है तब विरोध करनेवालेकी कमजोरीके अर्थमें आपको उसकी बहुत बडी कीमत चुकानी पड़ती है। यूरोपने नाजारेथके ईशुके बहादुरी, हिम्मत और पूरी बुद्धिमानीसे किए हुए विरोधको मंद विरोध समझनेकी गलती की, जैसे वह किसी कमजोरका विरोध हो। जब मैंने पहली बार न्यू टेस्टामेट पढी तभी चार गॉस्पेलोमे बयान किए गए ईशुके चरित्रके बारेमे कोई निष्क्रियता, कोई कमजोरी मुझे नही मालूम पडी। और जब मैने टॉल्सटॉयकी 'हार्मनी ऑव दी गॉस्पेल्स' नामकी किताब और उनकी इस विषयसे संबंध रखनेवाली दूसरी किताबे पढी तब उसका मतलब और ज्यादा साफ हो गया। क्या ईशुको मंद विरोध करनेवाला समझनेकी गलती करनेके लिए पश्चिमको बहुत बड़ी कीमत नही चुकानी पड़ी है? सारे ईसाई देश उन महायुद्धोके लिए जिम्मेदार रहे है, जिन्होने ओल्ड टेस्टामेंटमे बयान किए गए और दूसरे ऐतिहासिक और अर्धऐतिहासिक महान् रेकार्डोंपर

धब्बा लगाया है। मैं जानता हूं कि मेरी बातमें कुछ गलती हो सकती है, क्योंकि नए और पुराने दोनों तरहके इतिहासकी मेरी जानकारी बहुत थोड़ी है।

अपने निजी अनुभवके बारेमें मैं कहूंगा कि बेशक हमको मंद विरोधके जरिए राजनैतिक आजादी मिली, जिसपर आप और आपके पति जैसे पश्चिमके शांतिपसंद लोग इतने उत्साहित हैं। मगर हमने, या कहिए कि मैंने मंद विरोधको अहिंसक विरोध मान लेनेकी जो भयंकर भूल की, उसकी भारी कीमत हम रोजाना चुका रहे हैं। अगर मैंने यह गलती न की होती तो हमें एक कमजोर भाईके हाथों दूसरे कमजोर भाईके बिना सोचे-बिचारे वहशियाना ढंगसे मारे जानेका शर्मनाक दृश्य न देखना पडता।

मैं सिर्फ यही उम्मीद और प्रार्थना करता हूं और यहांके व दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें रहनेवाले दोस्तोंसे चाहता हूं कि वे भी मेरे साथ यह उम्मीद और प्रार्थना करें कि यह खूनकी होली जल्द खतम होगी और उसमेंसे—शायद अनिवार्य खून-खराबीमेंसे—निकलकर एक नया और मजबूत हिंदुस्तान ऊपर उठेगा। वह पश्चिमकी सारी भयंकरताओंकी नीचतासे नकल करनेवाला लडाई-पसंद हिंदुस्तान नहीं होगा। वह पश्चिमकी सारी अच्छी बातोंको सीखनेवाला और एशिया व अफ्रीका ही नहीं, बल्कि सारी दु:खी दुनियाका आशाकेंद्र बननेवाला हिंदुस्तान होगा।

मुझे मानना चाहिए कि यह दुराशामात्र है, क्योंकि आज हम फौजमें और जिस्मानी ताकतको व्यक्त करनेवाली सारी

चीजोंमें पक्का विश्वास रखने लगे हैं। हमारे राजनीतिज्ञ अंग्रेजी हुकूमतमें हथियारोंपर किए जानेवाले भारी खर्चके खिलाफ दो पीढियोंतक आवाज उठाते रहे हैं। मगर अब चूंकि राजनैतिक गुलामीसे हमें छुटकारा मिल गया है, हमारा फौजी खर्च बढ़ गया है, और भय है कि वह और ज्यादा बढेगा। और इसपर हमें अभिमान है! इसके खिलाफ हमारी धारासभाओंमें एक भी आवाज नहीं उठी है। फिर भी मुझे और बहुतसे दूसरे लोगोंको उम्मीद है कि इस पागलपन और पश्चिमके भड़कीलेपनकी झूठी नकल करनेके बावजूद हिंदुस्तान इस मौतके मुंहसे बच जायगा और सन् १९१५ से लगातार ३२ सालतक अहिंसाकी तालीम लेनेके बाद उसे जिस नैतिक ऊंचाईपर पहुंचना चाहिए, वहां पहुंच जायगा।

नई दिल्ली, २९-११-'४७

: ६२ :

मालिकको बराबरी किस तरह करोगे ?

मजदूर-दिनके लिए आपने मेरा संदेश मांगा है। मेरा जीवन ही मेरा संदेश है। मजदूरोंने अगर अहिंसाका पाठ पूरी तरहसे समझा हो तो उनमें हिंदू-मुसलमानका भेदभाव नहीं होना चाहिए। हिंदुओंमें छूआछूतकी गंधतक न हो। मजदूरोंमें भेदभाव किस बातका ? मजदूरको अगर मालिककी

बराबरी करनी हो, तो उसे मिलको अपनी मिल्कियत समझकर उसकी सार-संभाल करनी चाहिए। अन्यायका विरोध कैसे किया जाय, यह बात तो अहमदाबादके मजदूर सीख गए है। मगर वे मालिकके साथ मिलोंके साझीदार बने, उससे पहले उन्हें दूसरे बहुतसे पाठ सीखने है। क्या यह बात वे जानते है? वे याद करे और आगे बढ़े।[१]

नई दिल्ली, २९-११-'४७

: ६३ :

संकटका समझदारीभरा उपयोग

"आप शरणार्थियोंके बारेमें उतना ही जानते है, जितना दूसरा कोई जानता है। उनके दुःख-दर्दकी कहानियां दिलको तोड़ देनेवाली है। कुछ ही हफ्तों पहले वे लोग खुशहाल थे, लेकिन आज कंगाल हो गए है। डॉक्टरीका धंधा करनेवाले लोग अपने साथ उस धंधेका कोई सामान पाकिस्तानसे नही ला सके है। चीर-फाड़ वगैराके औजार और डाक्टरीकी किताबें भी उनसे छीन ली गई हैं। निजी माल-असबाब और पैसा-टका सब वहीं छोड़ना पड़ा। वे सच्चे मानोमें गरीब, निराश्रित और बेरोजगार हो गए है। वे नहीं जानते कि वे क्या करें।

"आपने प्रार्थनाके बादके अपने भाषणोमें हमेशा यह कहा है कि आजके

---

[१] 'मजदूर-दिन' के बारेमें गांधीजीका अहमदाबादके मजूर-महाजनको श्रीअनसूयाबहनके मार्फत भेजा गया संदेश।

संकटका समय हमारी कसौटीका समय है। उसमें हमारा जीतना या हारना अपने आपपर निर्भर करता है। हालांकि हमारी पूरी हमदर्दी शरणार्थियोंके साथ है, फिर भी यह कबूल करना पड़ेगा कि उनमें सूझ-बूझकी कुछ कमी है। वे खुद अपनी रोजी कमानेका कोई उपाय नहीं खोजते। इससे उनकी तकलीफें और ज्यादा बढ़ गई हैं। ज्यादातर डॉक्टरों और वैद्योंकी—जो पाकिस्तानके अलग-अलग शहरोंमें अपनी खूब पैसा देनेवाली प्रैक्टिस छोड़कर यूनियनमें आए हैं—सिर्फ एक ही मांग है कि उन्हें दिल्लीकी किसी अच्छी बस्तीमें दूकान या मकान दे दिया जाय। जिन मर्दों और औरतोंको वहांसे नौकरी छोड़कर आना पड़ा है, वे चाहते हैं कि केंद्र या सूबेकी कोई सरकार उन्हें फिर नौकरी दे दे। लेकिन आजकी हालतमें ऐसे हजारों लोगोंमेंसे थोड़े ही लोग मनचाही जगह या नौकरी पानेकी उम्मीद रख सकते हैं। अगर सब डॉक्टरों या वैद्योंको मनकी जगह मिल जाय तो भी वे एक ही शहरमें शायद अपनी प्रैक्टिस नहीं जमा सकेंगे। जिन लोगोंको बदकिस्मतीसे दूकान या मकान नहीं मिलते, वे सोचते हैं कि उनके साथ न्याय नहीं किया जाता। मुझे लगता है कि आप अपनी कलमसे इन लोगोंको कोई सलाह दें तो इन्हें सही रास्ता दिखाई देगा।

"आज हमारे देशको हर मैदानमें सेवाकी जरूरत है, खास कर डॉक्टरी धंधेकी हर शाखाके सदस्योंको तो जनताकी सेवामें खो जाना कठिन नहीं मालूम होना चाहिए, बशर्ते कि वे छोटे शहरों या गांवोंमें जमनेके लिए तैयार हों। वहां रहकर वे लोगोंको सिर्फ डॉक्टरी मदद ही नहीं दे सकेंगे, बल्कि लोगोंको बीमारियोंसे बचनेके लिए सफाई और नियमसे रहना भी सिखा सकेंगे। अगर हमारी सरकारें ग्राम-सुधारके कार्यक्रमों-को सचमुच अमलमें लाना चाहती हैं तो मुझे तो कोई कारण नहीं दिखाई देता कि सारे डॉक्टर, सर्जन, नर्स और शिक्षक सीधे सरकारी नौकरीमें

क्यों नहीं लिए जा सकते। किसी सब-डिवीजन या गांवमें जम जानेसे भी एक अरसेके बाद खानगी प्रैक्टिसमें जरूरतसे ज्यादा पैसे मिलने चाहिए। हां, ऐसे हर मर्द या औरतको शहरी जीवनके सुख-सुभीते छोड़नेके लिए तैयार रहना चाहिए। शायद इनसे उन्हें हमेशा फायदा भी नहीं हुआ है। अगर वे चतुर, ईमानदार और हमदर्द हों तो राजपर आजकी तरह बोझ बननेके बजाय निश्चित रूपसे उसे फायदा पहुंचा सकते हैं। तब हमारा आजका संकट वरदान बन जायगा।"

यह खत एक ऐसे व्यक्तिने लिखा है, जो इस संकटके बारेमें सब कुछ जानता है। इसमें जरा भी शक नही कि अगर इस भयानक मुसीबतके शिकार बने लोग और जनता—जिसके बीच उन्हें कुछ समयके लिए रहना पड़ रहा है—सही बरताव करें तो यह संकट वरदान बन सकता है। मुझे कोई शक नही कि इस संकटमें डॉक्टरों, वकीलों, वैद्यों, हाकिमों, नर्सों, व्यापारियों और बैंकरों जैसे खास तालीम पाए हुए सब लोगोंको दूसरोंके साथ सुख-दुःख उठाकर पूरे सहकारसे छावनीका एक-सा जीवन बिताना चाहिए। उन्हें अपनेको दानपर जीनेवाले लाचार स्त्री-पुरुष नहीं, बल्कि होशियार सूझ-बूझवाले और आजाद स्त्री-पुरुष महसूस करना चाहिए, अपने दुःखोंकी ज्यादा परवाह नही करनी चाहिए और खुश रहकर ऐसे जीवनकी आशा करनी चाहिए जो उनके दुःखोसे ज्यादा समृद्ध और ऊंचा बना है, जिसका भविष्य उजला और शानदार है और जो उन लोगोंद्वारा नकल करने लायक है जिनके बीच छावनीका जीवन बिताया जाता है।

जब डॉक्टर, नर्स, वकील, व्यापारी वगैरह लोग निःस्वार्थ

और मिली-जुली सामाजिक जिंदगीके आदी हो जायगे और जब वे इन छावनियोमेसे बाहर भेजे जा सकेंगे तब वे गांवोंमें या शहरोमे फैल जायंगे और जहां कही रहेंगे वहा अपने जीवनकी खुशबू फैलाएंगे।

नई दिल्ली, ३०-११-'४७

: ६४ :

अहिंसाकी मर्यादा

एक सज्जनने मुझे खत लिखा है। उसका सार इस तरह है:

"व्यक्तिगत अहिंसा समझी जा सकती है। दोस्तोंके बीचकी समाजी अहिंसा भी समझमें आ सकती है; लेकिन आप तो कहते हैं कि दुश्मनोंके सामने भी अहिंसाका इस्तेमाल किया जा सकता है। यह तो आकाशके फूल-सी असंभव बात मालूम होती है। मेहरबानी करके आप यह हठ छोड़ दें तो अच्छा हो। अगर आप अपनी हठ नहीं छोड़ेंगे तो आजतककी कमाई हुई आबरू खो देंगे। आप महात्मा माने जाते हैं, इसलिए समाजके बहुतसे लोग आपके रास्ते चलकर बहुत दुःखी और पामाल हो रहे हैं और आगे भी होंगे। इससे समाजको नुकसान हो रहा है।"

जिस अहिंसाकी हद एक व्यक्तितक है, वह समाजके कामकी नही। मनुष्य समाजी जीव है, इसलिए उसकी शक्तियां

ऐसी होनी चाहिए कि समाजके सब लोग कोशिशसे उन्हें अपनेमे बढ़ा सके। दोस्तोंके बीच ही जो सीखा और बढ़ाया जा सके, वह गुण विनय या नम्रता है। उसमें अहिंसाका थोड़ा अंश है; लेकिन वह अहिंसाके नामसे पहचाना जाने लायक नहीं है। अहिंसाके सामने वैरका त्याग होना ही चाहिए, यह महावाक्य है। यानी जहां वैर अपनी आखिरी हदतक पहुंच चुका हो, वहां इस्तेमाल की जानेवाली अहिंसा भी ऊंची-से-ऊंची चोटीतक पहुंची हुई होनी चाहिए। यह अहिंसा सीखनेमें बहुत समय लगेगा। संभव है, पूरी जिंदगी खतम हो जाय, लेकिन इससे वह निरर्थक या बेकार नहीं हो जाती। इस अहिंसाके रास्ते चलते-चलते कई अनुभव होंगे। वे सब दिनों-दिन ज्यादा भव्य और प्रभावशाली होंगे। अहिंसाकी आखिरी चोटीपर पहुंचनेपर उसकी सुंदरता कैसी होगी, इसकी झांकी यात्रीको रोज-रोज देखनेको मिलती रहेगी और उसकी खुशी व उत्साह बढ़ेगा। इसका मतलब यह नही लगाया जा सकता कि मुसाफिरको रास्तेमे दिखाई देनेवाले सारे दृश्य मीठे और लुभावने मालूम होंगे। अहिंसाका रास्ता गुलाबके फूलोंकी सेज नही, वह कांटोंका रास्ता है। प्रीतम कविने गाया है कि 'हरिनो मारग छे शूरानो, नहि कायरनुं काम जो ने।'

इस समयका वातावरण इतना जहरीला बन गया है कि हम सयाने और अनुभवी लोगोंके वचन याद रखनेसे इन्कार करते है। रोज-रोज होनेवाले छोटे-मोटे अनुभवोंको भी नही देख सकते। बुराईका बदला भलाईसे चुकाना चाहिए, यह बात सबके मुंहपर होती है। इसका रोज-रोज अनुभव भी

होता है। फिर भी हम यह क्यो नही देख सकते कि अगर यह दुनिया वैरसे भरी होती तो इसका कभीका अंत हो गया होता ? आखिरमे दुनियामे प्रेम ही बढ़ता है। उससे दुनिया टिकी है और टिकती है।

इतनी बात सच है कि अहिंसाकी तालीम लेनी होती है और उसे बढ़ाना पड़ता है। उसकी गति ऊपरको होती है, इसलिए उसकी ऊची-से-ऊंची चोटीतक पहुचनेमे बड़ी मेहनत करनी पड़ती है। नीचे उतरनेमें मेहनत नही पड़ती। हम सब इस बारेमे अशिक्षित है। इसलिए जीवनमें मारकाट, गाली-गलौज ही हमारा स्वाभाविक अनुभव होता है।

अहिंसा अनुभवसे मंजे हुए आदमीको ही चुनती है।
नई दिल्ली, ८-१२-'४७

: ६५ :

दुःखीका धर्म

सिंधमे जीना बहुत भारी मालूम होनेसे सिंध छोड़कर आए हुए एक सिंधी भाई लिखते है :

"इस बड़ी मुसीबतके वक्त जब पश्चिमी पाकिस्तानसे हमारे हजारो भाई-बहन अपने पुश्तैनी घरबार छोड़कर इस हिस्सेमें आ रहे है तब दुःखकी बात यह है कि कई हिंदू संकुचित प्रांतीयता जतला रहे है। आपद्धर्म समझकर जो लोग बेहद दुःखकी वजहसे भाग निकले है उनकी तरफ सबको कम-से-कम मामूली दया तो जतलानी ही चाहिए। आपने हमको

दुःखी माना है, यह यथार्थ है। हममेंसे भी कई लोग अपने आपको शरणार्थी ही मानते हैं।

"दुखियोकी तादाद इतनी अधिक हो गई है कि कोई भी सरकार, जनताकी पूरी-पूरी मददके बिना इनके सवालको हल नहीं कर सकती। ऐसे वक्त कई मकान-मालिक अपने मकानोंका सिर्फ किराया ही नहीं बढ़ा रहे है, बल्कि मकान किराएसे देनेकी मेहरबानीके बदलेमें 'पगड़ी' भी मांगते हैं। ऐसी बुराइयोके खिलाफ क्या आप अपनी आवाज नहीं उठाएंगे?"

इस खतके लेखकके साथ मेरी सहानुभूति है, मगर उनके विश्लेषणका मै समर्थन नही कर सकता। फिर भी इतना कबूल करता हूं कि ऐसे मकान-मालिक पड़े है, जो दुखियोंके दु.ख जानते हुए भी उन्हें चूस लेनेवाला किराया लेते शरमाते नहीं हैं। यह कबूल करनेके साथ ही यह कहना जरूरी है कि ऐसे मालिक भी पड़े है, जो अपनी शक्तिभर दुखियोंके लिए सहूलियते पैदा करते है, फिर ये सहूलियतें लेखक या मै चाहूं, उतनी और वैसी भले ही न हों। मगर उसे कैसे भुलाया जा सकता है कि वे लोग दुखियोंकी सहूलियतके लिए खुद अड़चन भी उठाते हैं? अपने ऊपरका बोझ कम करनेका अच्छे-से-अच्छा तरीका यह है कि दु·खी लोग अपने ऊपर अचानक आ पड़े इस दुःखमेंसे सुख लेना सीख जाय। उन्हे नम्रताका पाठ सीखना चाहिए—ऐसी नम्रता, जिससे वे दूसरोके दोष देखने और उनकी टीका करनेके बदले अपने दोष देख सके। उनकी टीका कई बार बहुत कडी होती है, कई बार अनुचित होती है और कभी-कभी ही उचित होती है। अपने दोष देखनेसे इन्सान

ऊपर उठता है, दूसरोके दोष निकालनेसे नीचे गिरता है। इसके सिवा दुखी लोगोको सहयोग जीवनकी कला और उसमें रहनेवाले गुणोंको समझ लेना चाहिए। यह सीखते हुए वे देखेंगे कि सहयोगका घेरा बड़ा होता जाता है, जिससे उसमें सारे इन्सान समा जाते है। अगर दुखी लोग इतना करना सीख जायं तो उनमेसे कोई अपने आपको अकेला न माने। तब, सभी, चाहे वे किसी प्रांतके हों, अपनेको एक मानेगे और सुख खोजनेके बदले मनुष्यमात्रके कल्याणमे ही अपना कल्याण देखेंगे। इसका मतलब कोई यह न करे कि आखिरमे सबको एक ही जगह रहना होगा। यह हमेशा असंभव ही रहेगा और जब लाखोंका सवाल है तब तो बिलकुल ही असंभव है। मगर इसका मतलब इतना जरूर है कि हरएक अपनेको समुद्रमे एक बूदके समान समझकर दूसरेके साथ संबंध रखे, फिर भले ही दु.ख आ पडनेसे पहले सबके दरजे अलग-अलग रहे हों—किसीका नीचा रहा हो, किसीका ऊचा, और सभी अलग-अलग प्रांतोके हो, और फिर कोई ऐसा तो कह ही नही सकता कि मुझे तो फलां जगहपर ही रहना है। तब किसीको न तो अपने दिलमे कोई शिकायत रहेगी और न कोई प्रकट रूपसे शिकायत करेगा। तब मुसलमानोंके घर चाहें खाली हों, चाहे भरे हुए, मगर कोई उनपर अपनी मैली नजर नही डालेगा। ऐसे खाली मकानोंका क्या किया जाय, इसका फैसला करनेका काम सरकारका है। दुखियोंको एक ही फिकर करनी है कि उन सबको साथ रहना है और बहुतसे होते हुए भी ऐसे बरतना है, मानों सब एक ही हों। अगर ऊपर बतलाए हुए विचारोंपर अमल होगा और

वह फैलेगा तो दुखियो या शरणार्थियोको रखनेका सवाल बिलकुल हल्का हो जायगा और उनके बारेमे जो डर है, वह दूर हो जायगा।

ऐसी अच्छी व्यवस्थामें वे अपग या लाचार बनकर नही रहेंगे। ऐसे सभी दुखी, उनको दिया गया काम करेंगे और सभीके खाने, पहनने और रहनेका अच्छा इतजाम हो जायगा। ऐसा करनेसे वे स्वावलबी बनेंगे। औरत-मर्द सभी एक दूसरेको बराबर मानेंगे। कई काम तो सभी करेंगे, जैसे कि पाखाने साफ करना, कूडा-करकट निकालना वगैरह। किसी कामको ऊंचा और किसीको नीचा नही माना जायगा। ऐसे समाजमें कोई आवारा, आलसी या निकम्मा नही रहेगा। ऐसी जिंदगी शहरी जिंदगीसे बहुत ऊंची मानी जायगी। शहरी जीवनमे एक तरफ महल और दूसरी तरफ गंदे झोंपडे होते है, इन दोनोंमेसे कौन-सा ज्यादा घृणा पैदा करता है, यह कहना मुश्किल है।

नई दिल्ली, ९-१२-'४७

: ६६ :

मेव लोग क्या करें ?

आज मेरी बातका प्रभाव नही रहा, जो पहले था। एक जमाना था जब मेरी हर बातपर अमल किया जाता था। अगर मेरे कहनेमें पहलेकी ताकत और प्रभाव होता तो आज

एक भी मुसलमानको हिंदुस्तानी सघ छोड़कर पाकिस्तान जानेकी जरूरत न पड़ती, न किसी हिंदू या सिक्खको पाकिस्तान-मे अपना घरबार छोड़कर हिंदुस्तानी सघमे आसरा खोजनेकी जरूरत होती। हिंदुस्तान या पाकिस्तानमे जो कुछ हुआ—भयानक खूरेजी, आग, लूटपाट, औरतोको भगाना, जबरदस्ती लोगोका धर्म-परिवर्तन करना और इससे भी बुरी जो बाते हमने देखी है—वह सब मेरी रायमे बहुत बड़ा जगलीपन है। यह सच है कि पहले भी ऐसी बाते हुई है, लेकिन तब इतने बड़े पैमानेपर सांप्रदायिक फर्क नही पैदा हुआ था। ऐसी वर्बरता-भरी घटनाओंकी कहानियोसे मेरा दिल रजसे भर जाता है और सिर शर्मसे गड़ जाता है। इससे भी ज्यादा शर्मनाक बात मदिरो, मसजिदों और गुरुद्वारोंको तोड़ने और बिगाड़ने-की है। अगर इस तरहके पागलपनको रोका नही गया तो वह दोनों जातियोंका सर्वनाश कर देगा। जबतक देशमे इस तरहके पागलपनका राज है तबतक हम आजादीसे कोसों दूर रहेगे।

लेकिन इसका इलाज क्या है? संगीनोंकी ताकतमे मेरा विश्वास नही है। मै तो इसके इलाजके रूपमे आपको अहिंसाका हथियार ही दे सकता हूं। वह हर तरहके संकटका सामना कर सकता है और अजेय है। हिंदू धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म वगैरह सारे बड़े धर्मोमें अहिंसाकी वही सीख भरी है; लेकिन आज धर्मके पुजारियोने उसे सिर्फ किताबी उसूल बना रखा है, व्यवहारमें वे सब जंगलके कानूनको ही मानते है। संभव है, आज मेरी आवाज अरण्यरोदन-जैसी साबित हो, लेकिन मै तो आपको अहिंसाके सदेशके सिवा दूसरा कोई सदेश

नही दे सकता। मै तो यही कहूंगा कि जगली ताकतकी चुनौतीका मुकावला आत्माकी ताकतसे ही किया जा सकता है।

मेवोके प्रतिनिधिने मुझे यह दरखास्त पढ़ सुनाई, जिसमे उनकी सारी शिकायते दी गई है और उन्हे दूर करनेकी प्रार्थना की गई है। मैने वह खत आपके प्रधानमत्री डॉ० गोपीचंदके हाथमे रख दिया है। खतमे दी हुई वहुत-सी बातोके बारेमें वह क्या करना चाहते है, यह तो वह खुद आपको बताएंगे। मैं तो सिर्फ यही कह सकता हू कि अगर किसी सरकारी अफसरने बुरा काम किया होगा तो मुझे यकीन है कि सरकार उसके खिलाफ उचित कदम उठानेमें और उसे नसीहत देनेमे नही हिचकिचाएगी। किसी एक आदमीको सरकारकी सत्ता हड़पने नही दी जा सकती, न वह यह आशा कर सकता है कि उसके कहनेसे सरकारी अफसरोको एक जगहसे दूसरी जगह बदल दिया जाय। मै यह भी अच्छी तरह जानता हूं कि अपनी मरजी या राजी-खुशीकी दलीलपर किसीके धर्म-परिवर्तन या किसी औरतकी दूसरी जातिके मर्दके साथकी शादीको सही व कानूनी करार नहीं दिया जा सकता। जब चारों तरफ डरका राज फैला हो तब 'राजी-खुशी' या 'अपनी मरजी'की बात करना इन शब्दोके साथ अन्याय करना है।

अगर आपके दु खमे मेरे इन शब्दोसे आपको थोडा ढाढस बधे तो मुझे खुशी होगी। जिन मेवोको अलवर और भरतपुरसे निकाला गया है, उनके साथ मेरी पूरी हमदर्दी है। मै उस दिनकी आशा लगाए वैठा हूं, जब सारे वैर भुला दिए जायंगे, सारी नफरत दफना दी जायगी

जिन्हे अपने घरोसे निकाला गया है वे सब अपने-अपने घर लौटेंगे तथा पूरी शांति और सलामतीके वातावरणमें पहलेकी तरह अपने धंधे चालू करेंगे। तब मेरा दिल खुशीसे नाचने लगेगा। जबतक मै जिंदा रहूंगा तबतक यह आशा नही छोड़ूंगा, लेकिन मै कबूल करता हूं कि आजकी हालतोंमें यह नही हो सकता। मुझे इस बातका भरोसा है कि हमारी यूनियन सरकार इस बारेमें अपना फर्ज अदा करनेमे ढिलाई नही दिखाएगी और रियासतोंको यूनियन सरकारकी सलाह माननी पड़ेगी। यूनियनमें शामिल हो जानेसे रियासतोके शासकोंको अपनी प्रजाको दबाने और कुचलनेकी आजादी नही मिल जाती। अगर राजाओंको अपना दरजा कायम रखना है तो उन्हे अपनी प्रजाके ट्रस्टी और सच्चे सेवक बनना होगा।

अतमें मै मेव भाइयोंसे एक बात कहना चाहता हूं। मुझसे यह कहा गया है कि मेव लोग करीब-करीब जरायमपेशा जातियों-की तरह हैं। अगर यह बात सही हो तो आप लोगोंको अपने आपको सुधारनेकी पूरी कोशिश करनी चाहिए। अपने सुधारका काम आपको दूसरोंपर नही छोड़ना चाहिए। मुझे आशा है कि आप लोग मेरी इस सलाहपर नाराज नही होंगे। जिस अच्छी भावनासे मैंने आपको यह सलाह दी है, उसे आप उसी भावनासे ग्रहण करेंगे। यूनियनकी सरकारसे मै यह कहूंगा कि अगर मेवोंके बारेमें यह इलजाम सही हो तो भी, इस दलीलपर उन्हे निकालकर पाकिस्तान नही भेजा जा सकता। मेव लोग हिंदुस्तानी संघकी प्रजा है। इसलिए उसका यह फर्ज है कि

वह मेवोंको शिक्षाके सुभीते देकर और उनके बसनेके लिए बस्तियां बनाकर अपने आपको सुधारनेमे उनकी मदद करे।[1]

९-१२-'४७

: ६७ :

गहरी जड़ें

एक भाई लिखते हैं

"आजादी मिल जानेके बाद भी शहरके लोगोंपरसे अंग्रेजी भाषाका असर कम हुआ दिखाई नहीं देता। बंबईकी उद्योग-धंधो और खेतीकी नुमाइशकी ही मिसाल लीजिए। जिन्होने नुमाइश खोली, उन्होंने भी अंग्रेजीमें ही तकरीर की। दूकानोके तख्ते अंग्रेजीमें थे। चिट्ठी-पत्री भी ज्यादातर अंग्रेजीमें ही हुई। राशन कार्ड अंग्रेजीमें होते है, जिससे अंग्रेजी न पढ़ सकनेवाली आम जनताको बड़ी दिक्कत होती है। हमारे नेता गरीब जनताका बिलकुल ख्याल न करते हुए यही समझते है कि उनके खास-खास बयान और ऐलान अंग्रेजीमें ही होने चाहिए।"

यह शिकायत सच्ची लगती है। इसे तुरत दूर करना चाहिए। इस इतने बड़े मामलेमे तबतक कोई खासी तबदीली सुधारकी तरफ दिखाई नही देगी जबतक हम अपनी सुस्ती न छोड़ेगे। यह सुस्ती ही हमारी बदकिस्मती है।

नई दिल्ली, १०-१२-'४७

---

[1] गुड़गांव तहसीलके जसरा नामक गांवकी एक सभामें—जिसमें, ज्यादातर मेव लोग ही थे, दिया गया भाषण।

: ६८ :

मिल जानेका उसूल

कहा जाता है कि दक्षिण यूनियनकी कुछ देशी रियासतों-के लोगोंने यह जबरदस्त इच्छा प्रकट की है कि उनके राज-घरानोंको खतम कर दिया जाय और रियासतोंको हिंदुस्तानी संघमें मिला लिया जाय। ब्रिटिश हुकूमतके दिनोंमें ब्रिटिश हिंदु-स्तान अलग था और रियासतें या रियासती हिंदुस्तान अलग। अब इस नई तजवीजका मतलब यह लिया जाता है कि रियासतें उस जमानेके ब्रिटिश हिंदुस्तानमें मिल जायं।

जो समाज अहिंसापर कायम हो, उसमे किसी आदमीको धीरज खोकर दूसरेका नाश नही करना चाहिए; क्योंकि अगर हर बुराई करनेवाला आदमी अपनेको सुधारेगा नहीं तो खुद अपना नाश जरूर कर लेगा। बुराई कभी अपने पैरोंपर खड़ी रह ही नही सकती। इसीलिए कांग्रेसकी नीति हमेशा देशी राजाओं और उनके राजको सुधारनेकी रही है, उन्हें खतम करनेकी नही। कांग्रेस, राजाओंको सदा यही समझाती रही है कि वे अपनी प्रजाके सचमुच ट्रस्टी और सेवक बन जाय। इस नीतिके अनुसार कांग्रेस सरकारने राजाओंकी हुकूमतको खतम करने और उनकी रियासतोको पूरी तरह अपने सूबोंमें मिला लेनेकी तजवीज करनेके बजाय रियासतवालोंको यही समझानेकी कोशिश की है कि वे यूनियनसे अपना नाता जोड़ ले। इसमे कांग्रेस सरकारको बड़े दरजेतक कामयाबी भी मिली है। इसलिए किसी रियासतका पूरी तरह किसी सूबेमें

मिल जाना या बाकी हिंदुस्तानमें लीन हो जाना दो ही सूरतोंमें हो सकता है। एक सूरत तो यह है कि किसी राजाके राजमें अंधेर साफ चमकने लगे और उसका कोई इलाज न रह जाय। ऐसी हालतमे वहांके लोगोंको हक होगा, उनका धर्म भी होगा कि वे पासके सूबोंमें बिलकुल मिल जानेकी कोशिश करे। दूसरी सूरत यह हो सकती है कि राजा और प्रजा दोनों मिलकर इसका फैसला करें। किसी-किसीने यह भी कहा है कि जबतक सब रियासते या ज्यादातर रियासते इस तरह अपनेको मिटा देनेको तैयार न हो तबतक किसी अकेली रियासत या वहाके लोगोंको—चाहे वह बड़ी रियासत हो या छोटी—ऐसा नही करना चाहिए। लेकिन मेरा यह खयाल नही है। यह नही हो सकता कि जबतक दूसरी रियासतोंमे भी वैसा ही अंधेर शुरू न हो जाय तबतक किसी एक रियासतका अंधेर चलता ही रहे और खतम न किया जा सके। इसी तरह अगर कोई राजा खुद अपने राजके अधिकारको खतम करना चाहे तो उसे जबरदस्ती यह नही कहा जा सकता कि जब-तक और सब इसके लिए तैयार न हो जायं तबतक तुम भी रुके रहो। आखिर तो हिंद सरकार हर रियासतके मामलेको अलग-अलग, जरूरत या हालतके मुताबिक, तय करेगी।

नई दिल्ली, १३-१२-'४७

: ६६ :

अब भी कातें !

एक भाईने मुझे लिखा है:

"मैं और मेरे घरके लोग बराबर चरखा कातते रहे हैं और खादी पहनते रहे हैं। अब आजादी मिल जानेके बाद भी क्या आप इसपर जोर देते हैं कि हम चरखा कातते रहें और खादी पहनते रहें ?"

यह एक अजीब सवाल है; पर बहुतसे लोगोंकी यही हालत है। इससे साफ जाहिर होता है कि इस तरहके लोगोंने चरखा कातना और खादी पहनना इसलिए शुरू किया था कि उनके खयालमें यह आजादी हासिल करनेका एक जरिया था। उनका दिल चरखे या खादीमे नहीं था। यह भाई भूल जाते है कि आजादीका मतलब सिर्फ विदेशियोके बोझका हमारे कंधोंपरसे हट जाना ही नही था। यह और बात है कि आजादीके लिए सबसे पहले इस बोझका हटना जरूरी था। खादीका मतलव है ऐसा रहन-सहन, जिसकी नीव अहिसापर हो। यही मतलब खादीका, आजादीके पहले था, यही आज भी है। ठीक हो या गलत, मेरी यही राय है कि खादी और अहिसाके करीब-करीब लोप हो जानेसे यह साबित होता है कि इन तमाम बरसोंमे हम खादीके असली और सबसे बड़े मतलबको कभी नही समझ पाए। इसलिए आज हमें जगह-जगह अराजकता और भाई-भाईकी लड़ाई देखनी पड़ रही है। मुझे इसमे जरा भी शक नही कि अगर हमे वह आजादी हासिल करनी है, जिसे हिंदुस्तानके करोड़ों गांववाले अपने

आप समझने और महसूस करने लगे तो चरखा कातना और खादी पहनना आज पहलेसे भी ज्यादा जरूरी है। वही इस धरतीपर ईश्वरका राज्य या रामराज्य कहा जायगा। खादी-के जरिए हम यह कोशिश कर रहे थे कि बिजली या भापसे चलनेवाली मशीनके, आदमीपर चढ़ बैठनेके बजाय, आदमी मशीनके ऊपर रहे। खादीके जरिए हम कोशिश कर रहे थे कि आज आदमी-आदमीके बीच जो गरीब-अमीर और छोटे-बडेका जबरदस्त फर्क दिखाई दे रहा है, उसकी जगह आदमी-आदमीमे और सब मर्दो व औरतोंमें बराबरी कायम हो। हम यह कोशिश कर रहे थे कि बजाय इसके कि पूंजीपति मजदूरोंपर हावी होकर रहे और उनपर बेजा शान जमावे, मजदूर पूजीपतियोंपर हावी बनकर रहे। इसलिए पिछले तीस बरसोंमे हमने हिंदुस्तानमें जो कुछ किया, वह अगर उलटी चाल नही थी तो हमे पहलेसे भी ज्यादा जोरोसे और कही ज्यादा समझके साथ चरखेकी कताई और उसके साथके सब कामोंको जारी रखना चाहिए।

नई दिल्ली, १३-१२-'४७

: ७० :

प्रांतीय गवर्नर कौन हो ?

आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल लिखते है :

"एक सवाल है, जो मेरे ख्यालसे महत्वका है और जिसके बारेमें

में आपकी राय जानना चाहता हूं। हिंदका जो नया विधान बनाया जा रहा है उसमें प्रांतोंके गवर्नर चुननेके नियम रखे गए हैं। प्रांतका गवर्नर उस सूबेके सभी बालिगोंके मतसे चुना जायगा। इसलिए यह साफ जाहिर है कि जिसे कांग्रेसका पार्लमेंटरी बोर्ड चुनेगा, उसे ही आम तौरसे प्रांतकी जनता गवर्नर चुन लेगी। प्रांतका प्रधान मंत्री भी कांग्रेस पार्टीका ही होगा। प्रांतका गवर्नर ऐसा ही होना चाहिए, जो उस सूबेकी पार्टीबंदीसे अलग रहे; लेकिन अगर प्रांतका गवर्नर आम तौरसे कांग्रेसी होगा और उसी प्रांतका होगा तो वह कांग्रेसदलकी पार्टीबंदियोंसे अलग नहीं रह सकेगा। या तो वह कांग्रेस प्रधान मंत्रीके इशारोंपर चलेगा या फिर गवर्नर और प्रधानमंत्रीके बीच कुछ-न-कुछ खींचातानी रहेगी।

"मेरे ख्यालसे तो प्रांतोंमें अब गवर्नरकी जरूरत ही नहीं है। प्रधानमंत्री ही सब कामकाज चला सकता है। जनताका ५५००) रु० महीना गवर्नरकी तनखाहपर फजूल ही क्यों खर्च किया जाय? फिर भी अगर प्रांतोंमें गवर्नर रखने ही हैं तो वे उसी प्रांतके नहीं होने चाहिए। बालिग मतसे उन्हें चुननेमें भी बेकारका खर्च और परेशानी होगी। यही अच्छा होगा कि यूनियनका अध्यक्ष हर प्रांतमें दूसरे किसी प्रांतके ऐसे इज्जतदार कांग्रेसी सज्जनको भेजे, जो उस प्रांतकी पार्टीबंदीसे अलग रहकर वहांके सार्वजनिक और राजनैतिक जीवनको ऊंचा उठा सके। आज जो प्रांतोंके गवर्नर केंद्रीय सरकारने नियुक्त किए हैं, वे करीब-करीब इन्हीं सिद्धांतोंके अनुसार चुने गए हैं, ऐसा लगता है। और इसलिए प्रांतोंका राजनैतिक जीवन भी ठीक ही चल रहा है। अगर आजाद हिंदके आगेके विधानमें उसी प्रांतका आदमी बालिग मतसे चुननेका कायदा रखा गया तो, मुझे डर है कि प्रांतोंका राजनैतिक जीवन ऊंचा नहीं रह सकेगा।

"उस विधानमें गांव-पंचायतोंका और राजनैतिक सत्ताको छोटी इकाइयोंमें बांट देनेका किसी तरहका जिक्र नहीं किया गया है; लेकिन मेरा उद्देश्य अपने पूज्य नेताओंकी जरा भी टीका करना नहीं है। जो चीज मुझे बहुत खटकती है, उसपर मैं आपकी राय 'हरिजन'में चाहता हूं।"

आचार्यजीने प्रांतीय गवर्नरोंके बारेमे जो कहा है, उसके समर्थनमे कहनेको तो बहुत है, लेकिन मुझे कबूल करना होगा कि मैं विधान-परिषद्की सब कार्रवाई नहीं देख सका हू। मुझे इतना भी मालूम नही है कि गवर्नरके चुनावकी तजवीज किस तरह पैदा हुई। इसको न जानते हुए भी मुझे आचार्य-जीकी दलील मजबूत लगती है। लोगोंकी तिजोरीकी कौडी-कौड़ीको बचाना मुझे बहुत पसंद होते हुए भी प्रधान-मंत्रीको ही गवर्नर मान लेकर दूसरा कोई गवर्नर न रखनेकी इनकी बात मुझे नहीं जचती। किफायतके खयालसे प्रांतमेंसे गवर्नरको ही उड़ा देना मुझे गलत मालूम होता है गवर्नरोंको रोजानाके कारबारमें दखल देनेका बहुत अधिकार देना ठीक नही है। वैसे ही उनको सिर्फ शोभाका पुतला बना देना भी ठीक नही होगा। वजीरोंके कामको दुरुस्त करनेका अधिकार उन्हें होना चाहिए। सूबेकी खटपटसे अलग होनेके कारण भी वे सूबेका कारबार ठीक तरह देख सकेंगे और वजीरोंको गलतियोंसे बचा सकेंगे। गवर्नर लोग अपने-अपने सूबोंकी नीतिके रक्षक होने चाहिए। आचार्यजी जैसा बताते है, अगर विधानमे गाव-पंचायत और सत्ताको छोटी इकाइयोंमे बांटने (विकेंद्रीकरण)के बारेमें

इशारातक नही है तो यह गलती दूर होनी चाहिए। अगर आम राय ही हमारे लिए सब कुछ है तो पंचोंका अधिकार जितना ज्यादा हो, उतना लोगोंके लिए अच्छा है। पंचोंकी कार्रवाई और असर फायदेमंद हों, इसके लिए लोगोंकी सही तालीम बहुत आगे बढनी चाहिए। यह लोगोंकी फौजी ताकतकी बात नही है, बल्कि नैतिक ताकतकी बात है। इसलिए मेरे मनमे तो तालीमसे नई तालीमका ही मतलब है।

नई दिल्ली, १४-१२-'४७

: ७१ :

उपवास क्यों ?

"जब कभी आपके सामने कोई जबरदस्त मुश्किल आ जाती है तो आप उपवास क्यों कर बैठते है ? आपके इस कामका असर हिंदुस्तानकी जनताकी जिंदगीपर क्या होता है ?"

इस तरहके सवाल मुझसे पहले भी किये गए है। पर शायद ठीक इन्ही शब्दोंमे नही। इनका जवाब सीधा है। अहिंसाके पुजारीके पास यही आखिरी हथियार है। जब इन्सानी अक्ल काम नही करती तो अहिंसाका पुजारी उपवास करता है। उपवाससे प्रार्थनाकी तरफ तबियत ज्यादा तेजीसे जाती है। यानी उपवास एक रूहानी चीज है और उसका रुख ईश्वरकी तरफ होता है। इस तरहके कामका

असर जनताकी जिदगीपर यह होता है कि अगर वह उपवास करनेवालेको जानती है तो उसकी सोई हुई अतरात्मा जाग उठती है। इसमे एक खतरा जरूर रहता है। संभव है, लोग अपने प्यारेकी जान बचानेके लिए उसके साथ गलत हमदर्दी दिखाकर अपनी मरजीके खिलाफ काम कर लें। इस खतरेका सामना तो करना ही पड़ता है। आदमीको अगर अपने किसी कामके बारेमें यह यकीन हो जाय कि वह ठीक है तो उसे उस कामके करनेसे नहीं रुकना चाहिए। इस तरहका उपवास अंदरकी आवाजके जवाब-में किया जाता है, इसलिए उसमे जल्दबाजीका डर कम होता है।

नई दिल्ली, १४-१२-'४७

: ७२ :

सत्यसे क्या भय ?

सत्य वचन कठोर लगता हो तब भी उसका परिणाम शुभ ही होता है। सत्य वचन कभी अप्रस्तुत नही हो सकता। जो अप्रस्तुत है वह सत्य नही। गाय किस रास्ते गई, यह बतानेका मेरा शाश्वत धर्म नही। इसलिए बहुत बार यह बताना अप्रस्तुत हो सकता है। हिदुस्तानमें हिदुओंद्वारा किए गए अपकृत्योंको डोंडी पीटकर बताना चाहिए। ऐसा करना अप्रस्तुत न होगा। उसे खुले तौरसे स्वीकार कर

लेनेमे ही हिंदूकी रक्षा है। ऐसा करनेसे पाकिस्तानके मुसलमानोंके अपकृत्योंकी जल्दी-से-जल्दी समाप्ति हो सकती है। अपनी गलतीको स्वीकार कर लेनेकी प्रवृत्ति मनुष्यको पवित्र करती है, उसे ऊंचा उठाती है। उसे दबा देना शरीरमे जहरको दबाकर उसका नाश कर देनेकी भांति होगा। इसलिए यह सर्वथा त्याज्य है।

नई दिल्ली, १४-१२-'४७

: ७३ :

मिश्र खाद

खाद दो तरहकी कही जा सकती है। एक तो रासायनिक और दूसरी जीवित। कोई पूछ सकता है कि खाद भी कभी जीवित होती है? इसका अर्थ इतना ही है कि यहापर जीवित शब्द नए तरीकेसे इस्तेमाल किया गया है। अंग्रेजी शब्द 'ऑरगेनिक' का यह अनुवाद है। जीवित खाद, आदमी और जानवरोंके मल और उसमे घास-पत्ते वगैरह मिलावट या उनके बिना तैयार होती है। वनस्पतिको हम निर्जीव नही मानते। लोहे वगैराको जड़ मानते है। इस तरहके मिश्रणसे बनी हुई खादको अंग्रेजीमें 'कम्पोस्ट' कहते है। मैंने कम्पोस्टकी जगह 'मिश्र' शब्द इस्तेमाल किया है। ऐसी खादको मैं सुनहरी खाद मानता हूं। ऐसी खादसे जमीनकी ताकत बनी रहती है। उसका शोषण नही होता, जब कि

कहा जाता है कि रासायनिक खादसे जमीन कमजोर हो जाती है और कुछ समयतक इस्तेमाल करनेके बाद उसे (जमीनको) खाली रखना पड़ता है। जीवित खाद हानिकर जीव पैदा नही होने देती।

ऐसी खादका प्रचार करनेके लिए मीराबहनकी प्रेरणा और उत्साहसे दिल्लीमें इस महीनेमें एक सभा बुलवाई गई थी। उसमे डॉ० राजेंद्रप्रसाद सभापति थे। इस कामके विशारद सरदार दातारसिंह, डॉ० आचार्य वगैरह भी इकट्ठे हुए थे। उन्होंने तीन दिनके विचार-विनिमयके बाद कुछ महत्त्वके प्रस्ताव पास किए है। उनमे यह बताया गया है कि शहरोमें और सात लाख गांवोंमे इस बारेमें क्या करना चाहिए। शहरोंमें और देहातोंमें मनुष्यके और दूसरे जानवरोके मलको कूड़े-कचरे, चिथड़े व कारखानोमेसे निकले हुए मैलके साथ मिलानेका सुझाव रखा गया है। इस विभागके लिए एक छोटी-सी उप-समिति बनाई गई है।

अगर यह प्रस्ताव सिर्फ अखबारोंमे छपकर ही न रह जाय और करोड़ों उसपर अमल करे तो हिंदुस्तानकी शक्ल बदल जाय। हमारी बेखबरीसे जो करोड़ों रुपएका खाद बरबाद हो रहा है, वह बच जाय, जमीन उपजाऊ बने और जितनी फसल आज पैदा होती है उससे कई गुनी ज्यादा फसल पैदा होने लगे। परिणाम यह होगा कि भुखमरी बिलकुल दूर हो जायगी, करोड़ोंका पेट भरनेके लिए अन्न मिलेगा और उसके बाद बाहर भी भेजा जा सकेगा।

आज तो जैसी इन्सानकी और जानवरोंकी कंगाल हालत

है वैसी ही फसलकी है। इसमे दोष जमीनका नही, मनुष्यका है। आलस और अज्ञान नामके दो कीड़े हमको खा जाते है। मीराबहनने जो काम उठाया है, वह बहुत बडा है। उसमें संकड़ो मीराबहने खप सकती है। लोगोमे इस कामके लिए उत्साह होना चाहिए, विभागके लोग जाग्रत होने चाहिए। करोड़ोके करनेका काम थोडेसे सेवक-सेविकाओंसे नही हो सकेगा। इसमे तो सेवक-सेविकाओकी फौज चाहिए।

क्या हिंदुस्तानकी ऐसी अच्छी किस्मत है? हिंदुस्तान यानी दोनों हिस्से। अगर दक्षिणका हिस्सा यह काम शुरू कर दे तो उत्तरके हिस्सेद्वारा भी उसे शुरू हुआ ही समझिए।

नई दिल्ली, २१-१२-'४७

: ७४ :

आरोग्यके नियम

श्री ब्रजलाल नेहरू मेरे-जैसे ही खब्ती है। उन्होने अखबारोंमें एक पत्र लिखा है, जिसमे आरोग्य-मंत्री राजकुमारी अमृतकुंवरके इस कथनकी तारीफ की है कि हमारी बीमारियां अपने अज्ञान और लापरवाहीमेंसे पैदा होती हैं। उन्होंने यह सूचना की है कि आजतक आरोग्य-विभागका ध्यान अस्पताल वगैरह खोलनेपर ही रहा है। उसके बदले राज-

कुमारीने जिस अज्ञानका जिक्र किया है, उसे दूर करनेकी तरफ इस विभागको ध्यान देना चाहिए। उन्होने यह भी सुझाया है कि इसके लिए एक नया विभाग खोलना चाहिए। परदेशी हुकूमतकी यह एक बुरी आदत थी कि जो सुधार करना हो, उसके लिए नया विभाग और नया खर्च खड़ा किया जाय। लेकिन इस बुरी आदतकी नकल हम क्यों करें? बीमारियो-का इलाज करनेके लिए अस्पताल भले रहे, लेकिन उनपर इतना जोर क्या देना? घर बैठे आरोग्य कैसे संभाला जा सकता है, इसकी तालीम देना आरोग्य-विभागका पहला काम होना चाहिए। इसलिए आरोग्य-मंत्रीको यह समझना चाहिए कि उसके नीचे जो डाक्टर और नौकर काम करते है, उनका पहला फर्ज है जनताके आरोग्यकी रक्षा और उसकी सभाल करना।

श्री ब्रजलाल नेहरूकी एक सूचना ध्यान देने लायक है। वे लिखते है कि बीमारियोके इलाजके बारेमें ढेरो किताबे देखनेमे आती है, लेकिन कुदरती इलाज करनेवालोके सिवा डिग्रीवाले डॉक्टरोने आरोग्यके नियमोके बारेमे कोई किताब लिखी हो, ऐसा कभी सुना नही गया। इसलिए श्री नेहरू यह सूचना करते है कि आरोग्य-मत्री मशहूर डॉक्टरोसे ऐसी किताब लिखवाए। यह किताब लोगोके समझने लायक भाषामे लिखी जाय तो जरूर उपयोगी साबित होगी। शर्त यही है कि ऐसी किताबमे तरह-तरहके टीके लगानेकी बात नही होनी चाहिए। आरोग्यके नियम ऐसे होने चाहिए, जिनका पालन डॉक्टर-वैद्योकी मददके बिना घर बैठे हो सके। ऐसा

न हो तो कुएमेंसे निकलकर खाईमे गिरने-जैसी बात होना सभव है।

नई दिल्ली, २१-१२-'४७

: ७५ :

देहातोंमें संग्रहकी जरूरत

श्री वैकुंठभाई लिखते है :

"आजकलकी व्यापार-पद्धतिका परिणाम यह होता है कि देहातोका अनाज परदेश चला जाता है। देशके बहुतसे हिस्सोंमें गांवोंमें स्थानिक संग्रह नहीं रहता। परिणाम स्वरूप मजदूर वर्गको कष्ट उठाना पड़ता है और चौमासेमें अनाजका भाव खूब बढ़ जाता है। ऐसी हालतमें यह अच्छा होगा कि गरीब प्रजाको बचानेके लिए देहातमें ही पंचके कब्जेमें किसी अच्छे गोदाममें काफी परिमाणमें अन्न इकट्ठा किया जाय और वहींसे जहां भेजना हो भेजा जाय। इस दृष्टिसे चार साल पहले श्री अच्युतराव पटवर्धन और मैंने एक योजना तैयार की थी। श्री कुमारप्पाने जो योजना बनाई है, उसमें भी उन्होने इस तरहकी व्यवस्थाकी जरूरत स्वीकार की है।

"आजके नए संयोगोमें आपको ठीक लगे तो आप प्रांतीय सरकारोको और देहाती प्रजाको इस बारेमें कुछ सूचना कर सकते हैं।"

मुझे तो इस सूचनामें बहुत सचाई मालूम होती है। हमारे देशके अर्थशास्त्र या माली व्यवस्थाके लिए ऐसे संग्रहकी जरूरत है। जबसे नकद टैक्स देनेकी प्रथा जारी हुई तबसे

देहातोंमे अन्नका सग्रह कम हो गया है। यहां मै नकद टैक्सके गुण-दोषोमे उतरना नही चाहता, मगर इतना मै मानता हू कि अगर देहातोमे अन्न-सग्रह करनेकी प्रथा चालू होती तो आजकी विपदासे शायद हम बच जाते। जब अकुश उठ रहे हैं तब अगर वैकुठभाईकी सूचनाके अनुसार देहातमे अन्नका सग्रह हो और व्यापारी और देहाती ईमानदार बन जाय तो किसीको कष्ट नही होगा। अगर किसानको और व्यापारीको योग्य नफा मिले तो मजदूर-वर्ग और शहरके दूसरे लोगोको महगाईका सामना करना ही न पडे। मतलब तो यह है कि अगर सबके अनुकूल जीवन बन जाय तो फिर सस्ते और महगे भावका सवाल उठ जायगा।

नई दिल्ली, २२-१२-'४७

: ७६ :

त्याग और उद्यमका नमूना

भाई दिलखुश दीवानजी अपने ४ दिसंबरके खतमे लिखते हैं .

"आप टेकपर अड़े रहनेवाले कराड़ीके पांचाकाकाको पहचानते ही हैं। २९-११-'४७ की दोपहरको उनके भतीजे वालजीभाई बुनाई-काम करते-करते हृदयकी गति बंद हो जानेसे बुनाई-घरके सामने ही मर गए। वालजीभाई बचपनसे ही अपने काकाके पास रहे थे और उनके टेकभरे जीवनका रंग उनपर भी चढ़ा था।

"१९२३में पाचाकाकाने कराड़ीमें पहलेपहल खड्डी चलाई। थोड़े ही दिनोंमें वालजीभाई जोन कारखानेकी अधिक तनखाहवाली नौकरी छोड़कर कराड़ीमें खड्डी चलाने लगे। जीवनकी आखिरी घड़ी-तक उन्होंने खड्डी नहीं छोड़ी और खड्डीके सामने ही जीवन-लीला समाप्त की। वे बहुत होशियार बुनकर थे। कई युवकोंको उन्होंने बुनाई-काम सिखाया था। वे बहुत शांत प्रकृतिके थे। सबके साथ घुलमिल जाते थे और हमेशा हँसते रहते थे। हमारे खादी-काममें वालजीभाईने बुनाई-कामका विकास करके आखिरतक हमारी बहुत मदद की। ऐसे बुनकरके लिए हमें गर्व था। उनकी मौत भी धन्य है! काकाकी टेक भतीजेमें उतरी।

"काकाकी सत्याग्रही जमीनपर बने हुए हमारे बुनाई-घरके सामने ही वालजीभाईने बुनाईका काम करते-करते देह छोड़ी। उनके श्रमजीवी जीवनमें हमने त्याग, सेवा और उद्यमपरायणताके सुमेलका अनुभव किया।

"उनकी सेवा मूक थी। मगर बुनाई-कामके विकासमें वह जबरदस्त बनती गई। ६–७ नौजवानोंका छोटा-सा समूह उन्हें घेरे रहता था और उनकी देखरेखमें बुनाई-काम सीख गया था। यही उनकी विरासत है।

"पांचाकाकाकी टेक अभी जिंदा है। अपनी जमीनमें हल चलानेकी वे अभी 'ना' ही करते हैं। वे पूछते हैं कि 'सच्चा स्वराज अभी आया कहां है? जब प्रजा पुलिसकी मददके बिना रहना सीखेगी तभी मेरी स्वराजकी टेक पूरी होगी। बापू साबरमती आश्रम वापिस कहां गए हैं? बापू साबरमती जायंगे तभी जमीनमें हल चलाऊंगा और महसूल भरूंगा।' अभीतक उन्होंने वह जमीन हमारे कार्यालयको ही दे रखी है।"

स्व० वालजीभाई जैसे सेवक हिंदुस्तानको या जगतको

कम ही मिले हैं। 'पेड़ जैसा फल और बाप जैसा बेटा'वाली कहावत उनके बारेमे सच साबित हुई है। पांचाकाकाकी टेक तो अद्वितीय ही रहेगी। सच्चा स्वराज कहां मिला है? आज तो वह बहुत दूर लगता है।

वालजीभाई जैसे बुनकर ६–७ ही कैसे? क्या इतनेसे कराड़ीने स्वराज्य लिया कहा जा सकता है?

नई दिल्ली, २२–१२–'४७

: ७७ :

सोमनाथके दरवाजे

पडित सुदरलालने ('हरिजन'के) हिदुस्तानी संस्करणमे सोमनाथ मदिरके प्रसिद्ध दरवाजोंके बारेमे एक सुंदर लेख लिखा है। उत्सुक जनोंको मूल लेख अवश्य पढ़ना चाहिए। लेखकने जो खास बात उठाई है वह यह है कि जो दरवाजे गजनी ले जाये गए थे वे, जैसा कि उस वक्त कहा गया था, वापस नही लाये गए। जो लाये गए वे बनावटी निकले और जब इस जालका पता चला तब दरवाजोंका आम-प्रदर्शन आगरेसे आगे नही किया जा सका। पंडित सुंदरलालजीको डर है कि इस प्रसिद्ध मंदिरके जीर्णोद्धारमें भी कही ऐसा ही जाल न किया गया हो!

नई दिल्ली, २२–१२–'४७

: ७८ :

दिल्लीके व्यापारियोंको संदेश

मैं समझता हूं कि जो अंकुश अनाजपर लगाया जाता है, वह बुरा है। हिंदुस्तानका हित उसमें हो नहीं सकता। कपड़ेका अंकुश भी हटना चाहिए। आज जब हमें आजादी मिल गई है तो उसमें हमपर अंकुश क्यों? जवाहरलालजी, सरदार पटेल वगैरह जनताके सेवक हैं। जनताकी इच्छाके विरुद्ध वे कुछ कर नहीं सकते। अगर हम उन्हें कहें कि आप अपने पदोंपरसे हट जाइए तो वे वहां रह नहीं सकते। वे रहना भी नहीं चाहते। वे लोग हमेशा कहते हैं कि हम तो लोगोंका ही काम करना चाहते हैं। हम लोगोंके सेवक हैं। बात सच भी है। ३२ वरससे हम अंग्रेजोंसे लड़ते आए हैं और हमने यह बता दिया कि सच्ची लोकसत्ता कैसे चलती है, लेकिन हमारी सत्ता अंग्रेजों-जैसी नहीं है। वे इंग्लैंडसे फौज वगैरह ला सकते थे। हमारे पास वह सब नहीं है; लेकिन हमारे मंत्रियोंके पास इससे भी बड़ी ताकत है। जवाहरलालजी, सरदार पटेल वगैरहके पीछे फौज और पुलिससे बढ़कर लोकमतकी ताकत है।

अंकुशकी जरूरत क्यों पड़ी? व्यापारियोंकी बेईमानी और नफाखोरीके डरसे ही अंकुश लगानेकी जरूरत पड़ी। एक मजदूरको अपनी मेहनतके लिए जो पैसा मिलना चाहिए, उससे ज्यादा एक व्यापारीको उसकी मेहनतके लिए क्यों मिलना चाहिए? उसे अधिक नहीं लेना चाहिए। अगर

व्यापारी लोग इतना समझ ले तो आज हिंदुस्तानमें हमें खाने-पहननेकी चीजोंकी जो मुसीबतें बरदाश्त करनी पड़ती है, वे न करनी पडे। अगर हम-आप इस अंकुशको बरदाश्त नही करना चाहते तो उसे हटना ही होगा। अगर आप सच्चे हैं, मै सच्चा हूं तो अंकुश रह नही सकेगा। हम सच्चे न रहे तब तो अकुश उठनेसे हिंदुस्तान मर जायगा। व्यापारी मडलको और मिल-मालिकको आपसमे मिलना चाहिए, उनके प्रति जो शक किया जाता है उसे दूर करना चाहिए और एक-दूसरेकी शक्ति बढ़ानी चाहिए। गीताजीका श्लोक है "देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु व.।" देव आसमानमे नही पडे है। हमारी लड़कियां जैसे देवियां मानी जाती है, वैसे ही हम भी देव है। लेकिन कोई अपनेको देव कहते नही। वह अच्छा भी है। यह मनुष्यकी नम्रता है। तो हम देवों-जैसे शुद्ध बने, शुद्ध रहे और सुखी रहे तब हमारी गरीबी, भुखमरी, नंगापन वगैरह सब चला जायगा।

जहांतक, खासकर कपडेका सबंध है, लोग गांवोंमें अपनी जरूरतका कपडा खुद तैयार कर सकते है और उन्हे करना चाहिए। हमारी देवियां जब अपने पाक हाथोसे सूत कातेगी तभी करोडों रुपये गांववालोंकी जेबोमे जायंगे। ऐसा शुद्ध कौडीका सच्चा व्यापार हम करे। मै तो अपनेको किसान, भगी, व्यापारी सभी मानता हू। शुद्ध कौडीका व्यापार आप मुझसे सीखिए। मै व्यापार करना जानता हू। आखिर वकालत तो मैंने की है। वकालत भी तो एक किस्मका व्यापार ही है न? आज भी सबकी सेवा करता हू तो व्यापार ही करता

हूं। किसी भी तरीकेसे पैसे कमा लेना ही व्यापार नही है। आप अगर लोगोंकी सेवाके खातिर अकुश निकालना चाहते है, अपने खातिर नही, तो वह जायगा ही। आपने लिखा है कि "अकुश हटानेमे ही हिंदुस्तानकी उन्नति और आजादी रही है।" अगर वह सच्चा है तो आपके व्यापारमे बहुत सचाई होनी चाहिए, बहादुरी होनी चाहिए।

मेरे पास एक पत्र आया है, जिसमे लिखा है कि हिंदुस्तानमे विदेशी कपडा बहुत आने लगा है। यह भी लिखा है कि हमारा कपडा बाहर भेजा जाता है। मेरी रायमे ये दोनो चीजें गलत है। अब तो आप शायद ऐसा भी कहने लगे कि हम हिंदुस्तानकी स्त्रियोसे शादी नही करेंगे, बाहरकी स्त्रिया लायेंगे। तो वह कहाका व्यापार होगा? मेरी मा तो मेरी ही मां है। क्या दूसरी स्त्री ज्यादा खूबसूरत होगी तो उसे मैं अपनी मां बनाऊगा? ऐसे ही आपको बाहरके खूबसूरत कपड़े नही मगाने चाहिए।

आज व्यापारी लोग पैसा कमानेके लिए बाहरसे कपडा मगाते है; लेकिन हम विदेशी कपड़ा क्यो मगाएं और हमारा कपड़ा बाहर क्यो भेजे? यहां जितना कपड़ा बनता है उसीसे काम चलावे और हमारी जरूरत पूरी होनेके बाद बचे तो बाहर भेजे। मिलका कपड़ा भले आप बाहर भेजे, लेकिन उसी हालतमे, जब हम जरूरतकी पूरी खादी अपने देशमे तैयार कर ले। कपडेका अकुश तो जाय, मगर साथमे पेट्रोल, लकड़ी वगैरहका अंकुश भी जाना चाहिए।

यहा लिखा है कि "मिलवालोकी चालसे सावधान रहो।"

तव तो व्यापारियोंकी चालसे और मेरी चालसे भी लोगोंको सावधान रहना होगा। अगर मै दगा करता हूं, सेवाके नामसे अपना स्वार्थ साधता हू तो मेरा गला काटना होगा। अगर मिल-मालिक या व्यापारी स्वार्थ साधते है तो उनका वहिष्कार करना चाहिए।[१]

नई दिल्ली, २८-१२-'४७

: ७६ :

उर्दू 'हरिजन'

पाठक जानते है कि नागरी लिपिमे और उर्दू लिपिमे भी इसी नामसे अलग-अलग साप्ताहिक 'हरिजन' निकलता है। उर्दू लिपिमे जो निकलता है, वह उर्दू 'हरिजन' है। उसकी गिरती हुई हालतके वारेमे श्रीजीवणजी लिखते है :

"आज आपको उर्दू 'हरिजनसेवक'के बारेमें लिखनेकी जरूरत आ पड़ी है। इस वक्त इस पत्रकी मुश्किलसे ढाई सौ कापियां खपती है। हम लोगोने जब इसे शुरू किया था तब इसकी लगभग अठारह सौ कापियां खपती थीं। धीरे-धीरे बिक्री कम हो गई, खास करके लाहौरके दंगेके बाद। पहले अकेले लाहौर शहरमें पांच सौसे सात सौ कापियां जाती थीं। मौजूदा हिसाबसे इसे चालू रखें तो हर माह डेढ़ हजार रुपयोंका नुकसान सहना पड़े, यानी सालभरमें बीसेक हजारका नुकसान हो। आप कभी नहीं चाहेंगे कि अखबारको इस तरह चालू रखा जाय। सच पूछा जाय

[१] हार्डिंज लाइब्रेरीमें व्यापारियोकी एक सभामें दिया गया भाषण।

तो सितंबरमें मैं आपसे बिड़ला भवनमें मिला था तब इस बारेमें आपने मुझसे बात की ही थी। मगर मुझे उम्मीद थी कि देशका वातावरण सुधरनेपर इस हालतमें फेर पड़ेगा। इसके सिवा मेरे मनमें एक ख्याल यह था कि लोकसभामें कोई निश्चित प्रस्ताव पास न हो जाय तबतक नुकसान उठाकर भी इसे चालू रखा जाय, जिससे किसी तरहकी ग़लतफहमी न हो। अभी लोकसभाकी बैठक अप्रैलमें होगी। इसके बाद भी प्रस्तावका काम कब होगा, यह दूसरा सवाल है। इस तरह इस अखबारको अभी चार महीने और चालू रखें तो कोई खास हर्ज नहीं है, मगर पांच-छ हजारका ज्यादा नुकसान सहना पड़ेगा। इस तरह पूरी परिस्थितिका ख्याल करके आप अपना जो निर्णय देंगे, उसके मुताबिक मैं काम करूंगा। मौजूदा कलुषित वातावरणमें हमारा अखबार बंद होनेसे गलतफहमी न बढ़े, इसका खास विचार रखना होगा।"

मेरी हमेशा यह राय रही है कि नुकसान उठाकर कोई अखबार न निकाला जाय। लोगोंको जिस अखबारकी जरूरत हो, उसे वे कीमत देकर ले। जो अखबार विज्ञापन या इश्तहार छापकर अपना खर्च निकाले, उसे मैं स्वावलंबी अखबार नहीं मानता। उर्दू 'हरिजन'को नुकसान उठाकर इतना भी चलने दिया, इसका कारण यह था कि 'हरिजन'की अलग-अलग भाषाकी प्रतियोमे कुल मिलाकर नुकसान नही हो रहा था। मगर इस तरह अखबार निकालनेकी भी कोई हद होती है। हिंदुस्तानी और दो लिपियोंके बारेमे मेरे विचार पहले जैसे ही है। इसलिए अभी थोडे समयतक जैसे चलता है वैसे ही उर्दू अखबार निकलता रहेगा। इस अर्सेमे गुजराती 'हरिजन' पढ़नेवाले और दूसरे लोग सोच ले कि वे उर्दू 'हरिजन' निकलवाना चाहते है या नही। अगर चाहते हैं तो उन्हे उसके ग्राहक

बढ़ानेमे तबतक मदद करनी चाहिए, जबतक उनकी तादाद दो हजारतक न पहुंच जाय। इसके साथ ही वे दूसरी बात भी सोच ले। 'अगर उर्दू लिपि पसंद न पड़ती हो और उर्दू लिपिमे 'हरिजन' बद करना पडे तो नागरी लिपिमे 'हरिजन' न निकालनेका धर्म पैदा होगा। नागरी लिपिमे 'हरिजन' निकालनेका स्वतंत्र धर्म मै नही समझता। सुधारकके नाते मेरा धर्म है कि या तो मै दोनों लिपियोमें अखबार निकालू या फिर एकमें भी नही।

'हिंदी' नाम न रखकर 'हिंदुस्तानी' क्यो रखा और नागरी-उर्दू दोनों लिपियोंका आग्रह क्यो है, इसके बारेमे पहले अच्छी तरहसे लिखा जा चुका है। अब मुझे कोई नई दलील नही सूझती। यह लेख सिर्फ इतना बतलानेके लिए लिखा है कि उर्दू लिपिमे निकलनेवाले 'हरिजन'को किस तरह चालू रखा जा सकता है। मै यह माननेकी हिम्मत रखता हू कि मेरी आशा सफल होगी।

नई दिल्ली, २९-१२-'४७

: ८० :

खादकी व्यवस्था

"इधर-उधर बिखरा हुआ कूड़ा, द्रव हो या पदार्थ, जनताके स्वास्थ्य और सुविधाका रोड़ा होता है, जब कि अपने उचित स्थानपर इकट्ठे उसी 'कूड़ेकी खाद काममें आती है। कूड़ा

बिखराकर भूमिमाताका भोजन छीन लेना संगीन जुर्म है।"
ऐसा मीराबहनने २३-११-'४७के 'हरिजन' (पृष्ठ ४२८-२९)मे प्रकाशित अपने एक पत्रमे कहा है, जो इस प्रकार है .

"हम अपनी भूमाताके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते। वह परिश्रमपूर्वक हमें भोजन देती है, लेकिन इसके बदलेमें हम उसे नहीं खिलाते। सुपुत्रोंकी तरह अगर हम अपनी पूजनीया मांकी सेवा नहीं करते तो वह हमारा पालन-पोषण कैसे करेगी? हर साल हम खेत जोतकर उनमें बीज बोते और फसल काटते है, लेकिन जमीनको उसकी खूराक, खाद कभी-कभी ही देते है। जो देते भी है वह अधिकच्चा कूड़ा होता है। जिस तरह भलीभांति पकाया भोजन हमें चाहिए, वैसे ही जमीनको भी भलीभांति तैयार की गई खाद जरूरी है।"

उत्सुक जन इस पत्रकी प्रति मीराबहन, किसान आश्रम, ऋषिकेश (हरिद्वारके पास)से मगा सकते है।
नई दिल्ली, २९-१२-'४७

: ८१ :

धूलका धान

'धूलमेंसे धान' ऐसा शीर्षक भी रखा जा सकता था, मगर मैंने 'धूलका धान' शीर्षक रखना पसंद किया है।

धूलको छानकर उसमेंसे अनाजके दाने निकाल लेनेकी क्रियाको मैं धूलमेंसे धान निकालना कहता हू। उसी तरह महाउद्योगी चीनके लोग धूल या रेतमेंसे सोनेकी रज धोकर

निकालते है, इस क्रियाको भी मैं धूलमेंसे धान निकालना कहता हू। यहां धूलका रूप बदल गया और धानका तो बहुत ही बदल गया। मामूली तौरपर हम अनाजको धान कहते है। मगर जब धान शब्द सोनेकी रजके लिए काममें लाया जाता है तब तो उसके रूपमे बहुत बड़ा फर्क हुआ न ? यहां धानका मतलब ऐसी किसी उपयोगी चीजसे है, जिसकी कीमत आंकी जा सके।

मगर 'धूलका धान' शब्दोका प्रयोग करे तब धूलका रासायनिक रूप बदला हुआ माना जायगा। जैसे कि धूल यानी मिट्टीका अनाज बनाएगे तब धूलका धान करना कहा जायगा। मिट्टीमे अनाजके बीज डाले, उसमे जरूरतके मुताबिक पानी दे तो अनाज पैदा हो। इसे मैं धूलका धान करना कहता हूं। अपनी भाषाका रूप निश्चित नहीं हुआ, क्योकि उसकी उपेक्षा की गई है।

अब मे मूल चीजपर आता हूं। अंग्रेजी शब्द 'कम्पोस्ट'-को मै धूलका धान मानता हूं। कम्पोस्ट यानी गोबर और मनुष्य, जानवर और पक्षियोंकी विष्ठा या मल, घास, कूडा-करकट, छिलके, जूठन और पेशाव-जैसी चीजोके उचित मेलमेसे पैदा होनेवाली सुवर्णरूपी जीवित खाद। इसे खेतकी मिट्टीमे मिलाकर उसमे बीज बोए तो ऐसे खेतमें कम-से-कम दुगुनी फसल तो जरूर पैदा हो और फिर भी जमीन अपना कस न छोड़े।

इसके वारेमे मीरावहन खूब मेहनत उठा रही है। उन्होंने ऋषिकेशमे किसान-आश्रम खोला है। जो काम उन्होंने दिल्लीमें

शुरू किया, उसे वहांसे जारी रखना चाहती है, उन्होंने इस बारे-में छोटी-छोटी पत्रिकाएं निकालना शुरू किया है। उनके पाससे पत्रिका मंगवाई जा सकती है। उनकी पत्रिका उर्दू लिपिमे निकलती है। खुद मीराबहनको हिंदुस्तानीका ज्यादा ज्ञान नही है। इससे वह अंग्रेजीमे लिखती है और उनके मातहत काम करनेवाले उसका उर्दूमे तरजुमा करते है।

नई दिल्ली, २९–१२–'४७

: ८२ :

तात्यासाहब केळकर

दोस्तोंने मुझे कई बार पूछा कि मैंने तात्यासाहब केळकर-जैसे महान् देशभक्तकी मृत्युका उल्लेख क्यो नही किया, खासकर इसलिए कि वे मेरे राजनैतिक विरोधी थे और इससे भी ज्यादा इसलिए कि महाराष्ट्रके एक दलके लोगोमे मेरे बारेमे बहुत बडी गलतफहमी है। इन कारणोंने मुझपर असर नही किया, हालांकि मेरे टीकाकारोंके मुताबिक इन्ही कारणोसे मुझे तात्यासाहबकी मृत्युका उल्लेख करनेके लिए प्रेरित होना चाहिए था।

मृत्यु-जैसी बड़ी भारी घटनाका आम रिवाजके मुताबिक उल्लेख कर देना मैं बहुत अनुचित मानता हू, लेकिन देर हो जानेपर भी अपने पुराने-से-पुराने दोस्त हरिभाऊ पाठकके आग्रहके कारण अब मुझे ऐसा करना चाहिए।

यह बात मैं एकदम कबूल कर लूंगा कि अगर महत्त्वपूर्ण जन्मों और मृत्युओंका उल्लेख करना 'हरिजन'के लिए आम रिवाज होता तो तात्यासाहबकी मृत्युका सबसे पहले उल्लेख किया जाना चाहिए। लेकिन 'हरिजन' पत्रोंको ध्यानसे पढ़ने-वाले पाठकोंने देखा होगा कि 'हरिजन'ने ऐसे किसी रिवाजको नही माना है। इस तरहकी घटनाओंका उल्लेख करना मेरे अवकाश और किसी समयकी मेरी धुनपर निर्भर रहा है। पिछले कुछ अरसेसे तो मैं नियमसे अखबार भी नही पढ सका हूं।

इसके खिलाफ कोई कुछ भी कहे, लेकिन मेरे राजनैतिक विरोधी होते हुए भी तात्यासाहबको मैंने हमेशा अपना दोस्त माना था, जिनकी टीकासे मुझे फायदा होता था। स्व० लोकमान्यके माने हुए अनुयायीके नाते मैं उन्हे जानता था और उनकी इज्जत करता था। मेरे खयालमे सन् १९१९ में अखिल भारत कांग्रेस कमेटीकी एक बैठकमे मैंने यह सिफारिश की थी कि कांग्रेसका एक विधान तैयार किया जाय और कहा था कि अगर लोकमान्य तात्यासाहबको और देशबंधु श्रीनिशीथ सेनको मददके लिए मुझे दे दे तो मैं विधान तैयार करके कांग्रेसके सामने पेश करनेकी जिम्मेदारी लेता हूं। अपने साथ काम करनेवाले इन दोनों सज्जनोकी तारीफमे मुझे यह कहना चाहिए कि हालाकि मैंने समयपर विधानका अपना मसविदा उनके सामने पेश कर दिया, लेकिन उन्होने कभी उसमे रुकावट नही डाली। विधानके मसविदेपर विचार करनेके लिए जो कमेटी बैठी, उसमे तात्यासाहबने हमेशा ऐसी

टीका की, जिससे उसे सुधारने-सवारनेमे मदद मिली। इसके अलावा मेरे सुझावपर ही तात्यासाहबको हमेशा कांग्रेस वर्किंग कमेटीका सदस्य बनाया जाता था। मुझे ऐसा एक भी मौका याद नही आता जब उनकी टीका—हालांकि वह कभी-कभी कड़ुवी होती थी—रचनात्मक न हुई हो। वह निडर थे; लेकिन सभ्य और मित्रता भरे थे।

मुझे बहुत पहले यह मालूम हो चुका था कि वे मराठीके बड़े विद्वान लेखक थे। मुझे इस बातका अफसोस रहा है कि मराठीके तात्यासाहब और स्व० हरिनारायण आप्टे जैसे आधुनिक लेखकोकी बुद्धिका अमृतपान करनेके लिए मराठीका काफी अध्ययन करनेका मुझे कभी समय नही मिला। हिंदुस्तानी आकाशके श्री नरसोपत चितामन केळकर-जैसे चमकीले तारेके अस्तकी उपेक्षा करना मेरे लिए असभ्य और अशोभन बात होगी।

नई दिल्ली, ३१–१२–'४७

: ८३ :

अहिंसा कभी नाकाम नहीं जाती

एक यूरोपियन भाई लिखते है :

"रॉय वाकरने आपके कामपर, जो सराहनेके काबिल है, 'स्वोर्ड ऑव गोल्ड' ('सोनेकी तलवार') नामकी एक किताब लिखी है, जिसे पढ़कर रोंगटे खड़े होने लगते हैं। मैंने उस किताबको ध्यानसे पढ़ा। उससे पता

चला कि आपने जिंदगीभर अहिंसापर चलने और दूसरोंको चलानेकी पूरी कोशिश की है। किताब पढ़कर मेरी तसल्ली हो गई कि कम-से-कम जहांतक हिंदुस्तानके नेताओं और आम लोगोंका सवाल है, अपनी अपार लगनकी बदौलत आपको अपने काममें कामयाबी मिली है। ब्रिटेनने जो जाहिरा तौरपर इस तरह नेकदिली और दोस्तीके साथ हिंदुस्तान छोड़ दिया, उससे यह उम्मीद मालूम होती है कि अहिंसाकी कदर अब सिर्फ आपके मुल्कतक ही सीमित नहीं है। मालूम होता है कि हिंसाकी मजबूत मोटी दीवारें पहली बार कहीं-कहीं कुछ टूटी हैं और इन्सानी समाजके लिए कुछ भले दिन आनेवाले हैं।

"पर जॉर्ज डेवीजके 'पीस न्यूज' के आखिरी संस्करणमें यह छपा है कि आप खुद एक तरह अपनी हार मान रहे हैं। इसे पढ़कर मुझे उतनी ही ज्यादा निराशा हुई। मेरा दिल यह पढ़कर बड़ा दुखी हुआ कि आपको खुद आज जो निराशा अपने दिलमें महसूस हो रही है, वह पहले कभी न हुई थी। यह बिलकुल सच है कि ईश्वर आदमीकी कामयाबी नहीं देखता, बल्कि उसकी सचाई और प्रेम देखता है। फिर भी यह देखकर दुःख होता है कि इन्सानी समाज हिंसामें इतना डूबा हुआ है कि आपने और आपके थोड़ेसे साथियोंने जिंदगीभर जो रूहानी ताकत दिखाई है और जबरदस्त कुरबानियां की है, उनका भी समाजपर असर नहीं हुआ।

"मैं मानता हूं कि चीजोंकी असलियतको जितनी अच्छी तरह आप देख और समझ सकते हैं, मैं नहीं देख सकता। आप कहीं अच्छा समझ सकते हैं। फिर भी मैं नही मान सकता कि आपकी इतनी जबरदस्त और बहादुरीकी कोशिशें निकम्मी जाएं और इन्सानी समाजपर उनका असर न हो। आपने अपने शब्दोंसे और अपने कामोंसे जो अच्छे बीज मेहनतके साथ लगातार अपने चारों तरफ बोए हैं, वे फिजूल जाएं, यह दिल नही मानता।

"जो हो, कम-से-कम मैं (और मुझे भरोसा है कि जो बात मैं कहता हूं वही करोड़ोंके दिलसे निकल रही है) अपना यह जरूरी फर्ज समझता हूं कि आप जिस चीजको इन्सानी समाजके भले और उसके छुटकारेका एकमात्र रास्ता समझते थे, उसके लिए आपने जो अपनी सारी जिंदगी दे दी, इसके लिए मैं दिलसे आपका हद दर्जेका अहसान मानूं।"

जिस रिपोर्टका आपने जिक्र किया है, वह मैंने नहीं देखी। जो हो, मैंने जो कुछ कहा है उसका मतलब अहिंसाकी असफलतासे नहीं है। मैंने जो कुछ कहा है, उसका मतलब यह है कि मैं खुद वक्तपर इस बातको न देख सका कि जिसे मैं अहिंसा समझा था, वह अहिंसा थी ही नहीं, बल्कि कमजोरोंका मंद विरोध था, जो किसी मानीमें भी कभी अहिंसा कहा ही नहीं जा सकता। आज हिंदुस्तानमें जो भाई-भाईकी लड़ाई हो रही है, वह उन ताकतोंका सीधा नतीजा है जो तीस बरसके कमजोरोंके कारनामोंने पैदा कर दी हैं। इसलिए आज दुनिया-भरमें जो हिंसा फूट पड़ी है, उसे ठीक-ठीक देखनेका सही तरीका यही है कि हम इस बातको समझें कि मजबूत लोगोंकी उस अहिंसाका ढंग, जिसे कोई जीत ही नहीं सकता, अभी हमने पूरी तरह नहीं समझ पाया है। सच्ची अहिंसाकी ताकतका एक माशा भी कभी जाया नहीं जा सकता। इसलिए मुझे यह घमंड नहीं करना चाहिए और न आप-जैसे दोस्तोंको इस धोखेमें रहना चाहिए कि मैंने अपने अंदर भी कोई बड़ी बहादुरीभरी और टकसाली अहिंसा दरसाई है। मैं सिर्फ इतना दावा कर सकता हूं कि मैं बिना रुके उस तरफ बढ़ा चला जा रहा हूं। मेरी इस बातसे अहिंसामें आपका विश्वास

मजबूत हो जाना चाहिए और इससे आपको और आप-जैसे दोस्तोंको इस रास्तेपर और तेजीसे बढनेमे मदद मिलनी चाहिए।

नई दिल्ली, १-१-'४८

: ८४ :

नपी-तुली बात कहिए

मलाबारसे एक भाई लिखते है :

"२१ दिसंबर, १९४७ के 'हरिजन' में श्री देवप्रकाश नय्यरने 'तकलीकी ज्ञान-शक्ति'के बारेमें जो बातें विश्वासके साथ लिखी है, उनसे आश्चर्य होने लगता है। उन्होंने यह बताया है कि तकलीमें सारा ज्ञान समाया हुआ है या तकलीसे सारा ज्ञान हासिल किया जा सकता है या तकली ही सारे ज्ञानका निचोड़ है। मैं खुद लंबे समयसे कातता हूं और जीवनकी गांधीवादी फिलासफी (दर्शन) में मेरा विश्वास है; लेकिन ऊपरका लेख पढ़कर मुझे बड़ा अचरज हुआ। यह कहना कि तकली ज्ञानका 'अंत' है और उसके जरिए दुनियाके हर विषयका शिक्षण दिया जा सकता है, नीम हकीमकी उस गोलीकी तरह है, जिसके बारेमें हर तरहकी बीमारीको अच्छा करनेका दावा किया जाता है। गांधीजी भी तकलीके लिए ऐसी जादूभरी ताकतका दावा नहीं करते। इसमें कोई शक नहीं कि तकली, चरखे और कताईका शिक्षाकी उचित योजनामें, खासकर नई तालीममें, एक स्थान है। लेकिन यह कहना कि तकली स्वभावसे हमें गणित, पदार्थ-विज्ञान, अर्थशास्त्र वगैरहके अध्ययनमें ले जाती है, 'भावुक मूर्खता'के सिवा कुछ नहीं है। शिक्षाके क्षेत्रमें तकलीके गुणों और उपयोगिताको बढ़ा-चढ़ाकर बताना उतना ही बुरा है, जितना कि

दूसरे लोगोंद्वारा उसके सही स्थानको माननेसे इन्कार करना, बल्कि उससे भी बदतर है। यह पढ़कर हँसी आती है कि तकलीके जरिए हम पदार्थ-विज्ञान वगैरहके वैज्ञानिक नियमोंका अध्ययन कर सकते हैं। गांधीजीने देशकी माली हालत सुधारने और गरीबीको मिटानेके लिए तकली और चरखेको दाखिल किया और कहा कि जब आम जनता इन दोनोंका उपयोग करेगी तो वह नैतिक दृष्टिसे ऊपर उठेगी। इस तरह गांधीजी तकलीके लिए आर्थिक और नैतिक गुणोंका ही दावा करते हैं (जिसकी मुझे यहां ज्यादा चर्चा करनेकी जरूरत नहीं)। और इतना दावा काफी है। तकलीके लिए इससे ज्यादा बड़ा दावा क्यों किया जाय? इसकी जरूरत भी क्या है? तकलीका उत्साह रखनेवालोंको कताईके पक्षमें अपनी दलीलें इस हदतक नहीं ले जानी चाहिए कि लोग उनपर हँसें। कताईके मकसदको इस तरह आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।"

इससे जाहिर होता है कि खत लिखनेवाले भाईने श्री देवप्रकाश नय्यरके तकलीके बारेमें लिखे लेखको पूरी सावधानीसे नही पढा है। मैंने उसे पढ़ा है। उसमें उन्होंने ऐसा कोई दावा नही किया है, जिसकी खत लिखनेवाले भाईने कल्पना कर ली है। 'तकलीकी ज्ञान-शक्ति'के लेखकने यह नही कहा है कि "तकलीमे सारा ज्ञान समाया हुआ है", या कि "वह तकलीके जरिये हासिल किया जाता है"; और न उन्होंने यह कहा है कि "तकली ज्ञानका निचोड़ है।" उनका सिर्फ इतना ही कहना है कि जो बहुत-सा ज्ञान हम किताबोंके जरिये हासिल करते है, वह योग्य शिक्षकोंद्वारा दस्तकारियों-की मारफत ज्यादा अच्छी तरह सिखाया जा सकता है। यह हकीकत कि खत लिखनेवाले भाईको, जो लबे समयसे कताई

करते है, श्री देवप्रकाश नय्यरके दावेसे 'बडा अचरज' हुआ है और वह उसे 'भावुक मूर्खता' कहते है, इस बातको साबित करती है कि शिक्षा तकलीमे नही रहती, बल्कि एक शिक्षा-शास्त्रीमे रहती है, जो श्री देवप्रकाश नय्यरकी तरह तकलीकी शक्तियों और संभावनाओंकी परीक्षा करके ऊपरका दावा करनेका हक रखता है।

मुझे डर है कि खत लिखनेवाले भाईके इस आत्म-सतोषको मुझे दूर कर देना पडेगा कि मैंने भी निर्दोष दिखाई देनेवाली तकलीके लिए "आर्थिक और नैतिक गुणो"के सिवा दूसरे गुणोंका दावा नही किया है। मुझे यह कहते हुए अफसोस होता है कि मेरे इस मामूली दावेको भी सब लोगोंने स्वीकार नही किया है। शायद हिंदुस्तानमे मै पहला आदमी था, जिसने तकलीको उन गुणोंसे विभूषित किया, जिन्हे बढे-चढ़े कहा जा सकता है। इस क्षेत्रमे अमली शिक्षा देनेवाले शिक्षकोने दस्तकारियोमे उनसे कही ज्यादा सभावनाए खोज निकाली है, जिनका मैंने जिक्र किया था। इसका सारा श्रेय उन्हीको है।

मै खत लिखनेवाले भाईको जोरोंसे यह सलाह दूगा कि वह नम्रतासे श्री देवप्रकाश नय्यरके सावधानीसे पेश किए गए दावेको मंजूर करे और इस बारेमे उनसे ज्यादा जानकारी पानेकी कोशिश करे कि उन्होने अपने विद्यार्थियोंको नई तालीमके पाठ सिखानेमे तकलीके बारेमे यह खोज कैसे की। अगर उनकी खोज कल्पित होगी तो खत लिखनेवाले भाईको जल्दी ही इसका पता लग जायगा और श्री देवप्रकाश नय्यरको अपनी हार माननी पड़ेगी। कहा जाता है कि एक सेवके

अपनी डालसे नीचे गिरनेसे न्यूटनका तेज दिमाग गुरुत्वा-कर्षणका नियम खोज सका था।
नई दिल्ली, २-१-'४८

: ८५ :

क्या मैं इसका अधिकारी हूं ?

मेहमानदारी करनेवाले हिंदुस्तानका किनारा छोड़नेसे पहले रेवरेंड डॉ० जोन हेनिस होम्सने मुझे एक लंबा खत लिखा था। उसमें वह कहते हैं :

"बेशक, हालके महीनेमें होनेवाली दुःखभरी घटनाओंसे आप बहुत ज्यादा दुखी हुए हैं—उनके बोझसे आप दब-से गए हैं; लेकिन आपको कभी यह महसूस नहीं करना चाहिए कि इससे आपकी जिंदगीके कामको किसी तरह धक्का लगा है। मनुष्य-स्वभाव बहुत ज्यादा सहन नहीं कर सकता, वह बहुत बड़े दबावके नीचे टूट पड़ता है, और इस मामलेमें यह दबाव जितना अचानक था, उतना ही भयानक भी था। लेकिन इस मौकेपर भी हमेशाकी तरह आपका उपदेश सच्चा और आपका नेतृत्व ठोस बना रहा। आपने अकेले हाथों हिंदुस्तानको बरबादीसे बचा लिया और पलभरके लिए जो हार दिखाई दी, उसमेंसे जीतको जन्म दिया। पिछले कुछ महीनोंको मैं आपके अनोखे जीवनकी बड़ी-से-बड़ी विजयके महीने मानता हूं। इन अंधेरेसे भरे दिनोंमें आप जितने महान् साबित हुए हैं, उतने पहले कभी न हुए थे।"

मुझे ताज्जुब होता है कि क्या यह दावा साबित किया जा सकता है ? इसमें मुझे जरा भी शक नहीं कि अहिंसाके

बारेमें डॉ० होम्सनने जो कुछ कहा है, उससे कई गुना ज्यादा साबित करके दिखाया जा सकता है। मेरी कठिनाई बुनियादी है। क्या डॉ० होम्सनने अहिंसाकी जितनी तारीफ की है, उसके उतने गुण भी दुनियाको दिखाने लायक योग्यता मैंने हासिल कर ली है? मैं अहिंसाके कामको कितने ही अपूर्ण रूपसे क्यों न जानूं, फिर भी उसके बारेमें ऐसे दावे, जिन्हें बिना किसी शकके साबित न किया जा सके, पेश करनेमें ज्यादा-से-ज्यादा सावधानी रखना मैं हर कारणसे जरूरी समझता हूं।

नई दिल्ली, ३-१-'४८

: ८६ :

राष्ट्र-भाषा और लिपि

गिलांगसे श्री रमेशचंद्रजी पूछते हैं:

(१) "राष्ट्रभाषाको 'हिंदी' कहिये या 'हिंदुस्तानी' यह कोई खास विवादका सवाल नहीं है। रोजमर्राकी बातचीतमें तो चालू हिंदुस्तानी काममें आएगी ही। ऊंचे साहित्य, विज्ञान व ऐसे दूसरे विषयोंके लिए नए शब्दोंका कोष संस्कृत भाषासे ही बनेगा, इससे भी शायद ही कोई इन्कार करेगा। यह बात साफ-साफ सबको बतलाई जाय तो क्या हर्ज है?"

इस सवालका पहला हिस्सा तो ठीक है। अगर एक नामके सब एक ही मानी करें तो झंझट रहती ही नहीं। झगड़ा नामका नहीं है, कामका है। काम एक हो तो अनेक नामका विरोध वितंडावाद होगा।

ऊंचे साहित्य और विज्ञानके शब्द संस्कृतमेंसे ही क्यों हों ? इस बारेमें कोई आग्रह होना ही नहीं चाहिए। एक छोटी-सी समिति ऐसे शब्दोंका कोष बना सकती है। इसमें बात होगी चालू शब्दोंको इकट्ठा करनेकी। मान लीजिए कि एक अंग्रेजी शब्द हिंदुस्तानीमें चल पड़ा है, उसे निकालकर हम क्यों खास संस्कृत शब्द बनावें ? ऐसे ही, अगर अंग्रेजीका चलता शब्द ले लें तो उर्दू क्यों नहीं ? 'कुरसी' शब्दके लिए 'चतुष्पाद-पीठिका' लें कि बिना रोकटोकके 'कुरसी' लें ? ऐसी मिसालें और भी निकल सकती हैं।

(२) "जो मसला है, सो लिपिका है। दो लिपि चालू होते हुए भी यह सवाल (और ठीक सवाल) सभी करते हैं कि दो लिपिका चलन राष्ट्रके कामको चलानेमें बेकार बोझ साबित होगा।" तब दो लिपिके बदले एक लिपि, जो सभी प्रांतोंके लिए सहज और आसान है, क्यों न मानी जाय ?

"दो लिपि माननेके मानी भी मैं समझना चाहता हूं। क्या उसका यह मतलब होगा कि केंद्रीय सरकारकी सब घोषणाएं दोनों लिपियोंमें छापी जायंगी ?

"फिर, तार-घर वगैरहसे जो तार आदि निकलेंगे, वे तो किसी एक ही लिपिमें लिखे जायंगे। दूसरी लिपिका उपयोग इन जगहोंमें किस तरह हो सकेगा, यह भी मैं जानना चाहता हूं।

"मैं यह माननेको तैयार नहीं हूं (हालांकि बहुतेरे लोग ऐसा कहते हैं) कि दूसरी लिपि मुसलमान भाइयोंको खुश करनेके लिए रखी गई है। हमें तो यह देखना चाहिए कि किसीपर भी अन्याय किए बिना राष्ट्रका भला किस लिपिके चलनेमें होगा। नागरीके चलनसे मुसलमान भाइयोंको नुकसान होगा, ऐसा मानना तो ठीक नहीं है।

"जहांतक मैं समझता हूं, दोनों लिपिका चलन थोड़े अर्सेके लिए

ही जरूरी है, जिससे कि वे लोग जो इन लिपियोंके जानकार नहीं हैं, धीरे-धीरे जान जायं। आखिरमें सभी एक लिपिको अपनावें, इसमें कैसे संदेह हो सकता है?"

दो लिपिको रखते हुए जो आखिरमें आसान होगी वही चलेगी। यहां बात इतनी ही है कि उर्दूका बहिष्कार न हो। इस बहिष्कारमें द्वेष है। इस झगड़ेकी जड़में द्वेष था, आज वह बढ़ गया है। ऐसे मौकेपर हम, जो एक हिंदुस्तान चाहते हैं, और वह हथियारोंकी लड़ाईसे नहीं, उनका फर्ज होता है कि दोनों लिपिको जगह दें। हम यह भी न भूलें कि बहुतेरे हिंदू व सिक्ख पड़े हैं, जो नागरी लिपि जानते ही नहीं। मुझे इसका तजरबा हमेशा होता है।

करोड़ोंको दोनों लिपि सिखानेकी बात नहीं है। जिनको अपने सूबेसे बाहर काम करना है, उन्हें वे सीखनी चाहिएं। केंद्रके दफ्तरमें सब कुछ दोनों लिपियोंमें छापनेकी बात भी नहीं है। जो इश्तहार सबके लिए हों, उन्हें दोनों लिपियोंमें छापना जरूरी है। जब दोनों कौमोंके बीच जहर फैल गया है तब उर्दू लिपिका बहिष्कार लोक-वादका विरोध ही बनाना है।

तार आदि जब रोमन लिपिमें नहीं लिखे जायंगे तब शायद उर्दू या नागरी लिपिमें लिखे जायंगे। इसे मैं छोटा सवाल मानता हूं। जब हम अंग्रेजीका और रोमन लिपिका मोह छोड़ेंगे तब हमारा दिल और दिमाग ऐसा साफ हो जायगा कि हम इस झगड़ेके लिए शरमाएंगे।

किसीको राजी रखनेके लिए कोई बेजा काम हम कभी न करें। पर राजी रखना हर हालतमें गुनाह नहीं है।

एक ही लिपिको सब खुशीसे अपनावे तो अच्छा ही है। ऐसा होनेके लिए भी दो लिपियोका चलना आज जरूरी है।
नई दिल्ली, ४-१-'४८

: ८७ :

छात्रालयोंमें हरिजन

भाई परीक्षितलाल लिखते हैं :

"बंबई सरकारने छुआछूत दूर करनेके दो कानून बनाए हैं। उनके आधारपर मंदिर, कुंए, धर्मशालाएं, स्कूल, होटल वगैरह तमाम जगहें, जहां दूसरे हिंदू जा सकते हैं, वहां हरिजन भी खुले तौरपर जा सकते हैं। ऊपर बताए हुए कानूनोमें सार्वजनिक छात्रालय भी आ जाते हैं और उनके अनुसार बंबई प्रांतके कई छात्रालय, जो आजतक सिर्फ हिंदुओंकी ऊंची मानी जानेवाली जातियोके लिए ही खुले थे, अब अपने-आप हरिजनोके लिए भी खुले माने जा सकते हैं।

"थोड़े वक्तमें स्कूलो और कॉलेजोका चालू वर्ष पूरा होगा। यानी ऐसे सार्वजनिक छात्रालयोमें नई भरती करनेका सवाल खड़ा होगा। मेरा ऐसा अनुभव हुआ है कि ऐसे छात्रालयोमें हरिजन विद्यार्थियोको दाखिल करनेके बारेमें और उनके साथ बैठकर खाना खानेके बारेमें विद्यार्थियोका विरोध जितनी हदतक कम हुआ है, उतनी हदतक छात्रालयोके संचालक आगे नहीं बढ़ सके हैं। नतीजा यह हुआ है कि ज्यादातर विद्यार्थियोंकी सम्मति होते हुए भी संचालक-मंडलोने स्वयं आगे बढ़कर अपने छात्रालयोका दरवाजा हरिजनोके लिए खुला नहीं रखा। संचालक-मंडलोंको अब कानून भी मदद करता है। ऐसी हालतमें हरिजन

विद्यार्थियोंको कानूनका सहारा लेकर छात्रालयोंमें दाखिल होनेकी जरूरत पड़े उससे पहले, उम्मीद है कि संचालक-मंडल अपने आप छात्रालयोंके दरवाजे खोलकर हिंदुस्तानकी सच्ची सेवा करेंगे।

"सूरतमें पाटीदार आश्रम और अनाविल आश्रममें हरिजन विद्यार्थी बाकायदा दाखिल हुए हैं। भावनगरके तापीबाई गांधी कन्यागृहमें हरिजन छात्राएं हैं। इस तरह क्या आप गुजरात-काठियावाड़के सभी सार्व-जनिक और जातीय छात्रालयोंके संचालकोंसे सिफारिश करेंगे कि वे हरिजन विद्यार्थियोंको समान भावसे दाखिल कर लें?"

इसमे मैं इतना और बढ़ा देना चाहता हू कि अगर विद्यार्थी सच्चे हों तो उन्हें कोई रोक नही सकता। इस जमानेमें विद्या-र्थियोंके आगे संचालकोंकी नही चल सकती। उसमे भी जब धर्म विद्यार्थियोंके पक्षमे हो और सचालक अधर्म कर रहे हों तब तो सचालकोकी बिलकुल ही नही चल सकती। दुनियाको आम खानेसे काम है, पेड़ गिननेसे नही। चाहे जो कारण हो, छात्रालयोमे हरिजन हक और इज्जतके साथ दाखिल होने चाहिए।

नई दिल्ली, ४-१-'४८

: ८८ :

प्रमाणित-अप्रमाणितका फर्क

नीचेके सवाल आज उठ सकते है। यह जमानेके बदलनेकी निशानी है:

"आजादी मिलनेके बाद शुद्ध खादी, अप्रमाणित खादी, मिलके

कपड़े और विलायती कपड़ेमें बहुत फर्क नहीं रह जाता। जितनी जरूरत हो, उतना खुद ही कातकर और बुनकर पहनें तो जरूर फर्क हो जाता है; क्योंकि इससे एक खास विचार-धाराका पता चलता है। पर जितना कपड़ा चाहिए, उतना सूत तो काता नहीं जाता। खादी तो खादी-भंडारसे ही खरीदते हैं। उसके लिए भी जितना सूत देना पड़ता है, खुद नहीं काता जाता है। शुद्ध खादीमें कोई सुधार नहीं दिखाई देता। अप्रमाणित खादीमें बहुत तरहके कामके कपड़े आते हैं। इसका कारण यह दिखाई देता है कि शुद्ध खादीवालोंको सुधारमें कोई रस नहीं है। आजकल मजदूरी इतनी ज्यादा हो गई है कि जीवन-वेतनका भी सवाल नहीं रहता। फिर जरूरत हो तो अप्रमाणित खादी लेनेमें क्या हर्ज है?

"सारे देशमें कपड़ेकी काफी कमी है। राष्ट्रीय सरकार खुद विलायती कपड़ा मंगाती है। विलायती कपड़ा मंगाना न मंगाना सरकारके हाथमें है। फिर भी वह कपड़ा मंगाती है तो फिर खरीदनेमें क्या बुराई है?"

प्रमाणित खादी ही प्रमाण हो सकती है। यहां 'प्रमाणित' शब्दसे असली मतलब पूरी तरह जाहिर नहीं होता। प्रमाणित-का असली मतलब है—वह खादी जिसमें सूत पूरे-पूरे दाम देकर खरीदा गया है, जिसे ठीक दाम देकर हाथसे बुनवाया गया है और खादीका दाम नफाखोरीके लिए नहीं, बल्कि लोक-लाभके लिए ही रखा गया है। स्वावलंबी यानी अपनी बनाई खादीके सिवा बाकी ऐसी खादी बाजारसे लेनी पड़ती है। उस खादीके लिए कुछ प्रमाण जनताके लिए जरूरी है। ऐसा प्रमाण देनेवाली एक ही संस्था हो सकती है। वह है चरखा-संघ। इसलिए चरखा-संघ जिसे प्रमाण दे, वही प्रमाणित खादी।

उसे छोड़कर जो खादी मिले, वह अप्रमाणित हो जाती है।

प्रमाण-पत्र न लेनेमें कुछ-न-कुछ दोष तो होना ही चाहिए। दोषवाली खादी हम क्यों लें? दोषवाली और बेदोषकी खादीमे फर्क है, इसमे शकके लिए गुंजायश ही नही हो सकती।

यह सवाल किया जा सकता है कि प्रमाण-पत्रकी शर्तमे ही दोष हो सकता है। अगर दोष है तो उसे बताना जनताका धर्म है। आलसके कारण दोष बतानेके बदले अप्रमाणित और प्रमाणितका फर्क उड़ा देना किसी हालतमें ठीक नही है। हो सकता है कि हममे कुचाल इतनी बढ़ गई है कि हम ठीक चाल जनतामे चल ही नही सकते, या जिसे हम ठीक चाल मानते हैं, वह धोखा ही है। इस हदतक जाना जनताके प्रतिनिधिका काम नही है।

खादी, स्वदेशी मिलके कपड़े और विदेशी कपड़ेमें फर्क है, इस बातमे शक ही कैसे पैदा हो सकता है? परदेशी राज गया, इसलिए परदेशी कपड़ा लाना ठीक बात कैसे हो सकती है? ऐसा खयाल करना ही बताता है कि हम परदेशी राजके विरोधका असली कारण ही भूलते है। परदेशी राज होनेसे मुल्कको बड़ा माली नुकसान होता था। इस माली नुकसानको मिटाना ही स्वराजका पहला काम होना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि स्वराजमें शुद्ध खादीको ही जगह है। उसीमे लोक-कल्याण है। उसीसे समानता पैदा हो सकती है।

नई दिल्ली, ५–१–'४८

: ८९ :

खादीकी मारफत

एक सज्जन लिखते है :

"सारे हिंदुस्तानकी कपड़ेकी कमी ६ माहमें दूर हो सकती है। उसके लिए दो शर्तें है—१. गांव-गांवमें सूत कताई और बुनाई कराना प्रांतीय सरकारो और हिंद सरकारकी नीति हो, और इस काममें सरकारी नौकरोसे मदद मिले। २. अपने प्रांत व देशके बड़े नेता इधर अधिक ध्यान देकर इसका काफी प्रचार करें।"

कपड़ोंकी कमी पूरी करनेके लिए ये शर्तें आसान लगनी चाहिए। दोनों शर्तोंका पालन कांग्रेसी हुकूमतका धर्म है। जितनी ढिलाई है, सब धर्म-पालनकी कमी साबित करती है। ढिलाई आई है, इसमें शक नहीं है। उसे मिटानेका आज सबसे अच्छा मौका है; क्योंकि कपड़ोंके दाम बहुत बढ़ गए हैं। इसका सबब हमारी नादानी ही है। अब यह कैसे मिटें? जिनका खादीमें अटल विश्वास है, उनके व्यवहारसे, उनकी बुद्धिके तेजसे और तजरबेसे। जब हुकूमतकी नीति खादीके अनुकूल होगी तब कपड़े आदिपर अंकुशकी बात अपने आप छूट जायगी। इस बीच आज कपड़ोंपर जो अंकुश है, वह गरीबोंके हितमें जल्द-से-जल्द जाना चाहिए।

नई दिल्ली, ५-१-'४८

: ९० :

उर्दू लिपिका महत्त्व

करीब दो हफ्ते हुए, मैंने 'हरिजन बंधु' में इशारा किया था कि बिक्री कम हो रही है, इसलिए उर्दू 'हरिजन' शायद बंद करना पड़ेगा। घाटेका सवाल छोड़ दे तो भी जब मांग नहीं तब उसे छापनेमें कोई अर्थ नही। बिक्रीका गिरना मेरे लिए तो इस बातकी निशानी है कि लोगोंको यह चीज पसंद नहीं है। लोग इससे नाराज है। अगर मै इस चीजकी तरफ ध्यान न दूं तो मेरी मूर्खता होगी।

मेरे विचार बदल नही सकते, खासकर हमारे इतिहासके इस अनोखे मौकेपर। मै मानता हू कि खास सिद्धांतका सवाल न हो तो मुसलमानों या किसी दूसरेको दु:ख देनेवाली कोई बात करना गलती है। जो नागरी लिपिके अलावा उर्दूलिपि सीखनेकी तकलीफ उठाएंगे, उन्हे कोई नुकसान पहुंचनेवाला नही। उन्हे यह फायदा होगा कि वे उर्दू भी सीख जायंगे। हमारे देशमे बहुतसे लोग उर्दू जानते है। अगर आज हमारी विचारधारा टेढ़ी न चलती तो यह सीधी-सादी बात समझनेके लिए किसी दलीलकी जरूरत ही न थी। उर्दूलिपिमें कई कमियां है। मगर खूबसूरती और शानमे वह दुनियाकी किसी भी लिपिका मुकाबला कर सकती है। जबतक अरबी-फारसी जिदा है, उर्दूलिपि मर नही सकती, अगरचे उर्दूकी आज अपनी स्वतंत्र हैसियत है और उसे बाहरकी मददकी जरूरत ही नही। थोड़ी-सी तबदीली करनेसे उर्दूलिपि शार्ट हैंडका

काम दे सकती है। राष्ट्रलिपिके तौरपर अगर पुराने बंधन निकाल दिए जाय तो उर्दूलिपिमें ऐसा फेरफार किया जा सकता है कि विना किसी तकलीफके उसमें संस्कृतके श्लोक लिखे जा सके।

आखिरमें मुझे यह कहना है कि जो लोग गुस्सेमें आकर उर्दूलिपिका वहिष्कार करते है, वे यूनियनके मुसलमानोंकी खामखाह वेअदवी करते है। उनकी आंखोमें ये मुसलमान आज अपने देशमे परदेशी हो गए है। यह तो पाकिस्तानके वुरे तरीकोंकी नकल करना हुआ और वह भी बढ़ा-चढ़ाकर। मेरी हर एक हिंदुस्तानीसे यह मांग है कि वह पाकिस्तानकी वुराईकी नकल करनेसे इन्कार करे। अगर मैंने जो लिखा है, उसे वें पूरी तरह समझेंगे तो हिंदी और उर्दू 'हरिजन' को वंद होनेसे बचा लेंगे। क्या मुसलमान भाई इस मौकेपर पूरे उतरेंगे ? उन्हे दो चीजे करनी है। उर्दू 'हरिजन' खरीदना और मेहनतसे नागरी लिपि सीखकर अपने दिल और दिमागको फायदा पहुंचाना।

नई दिल्ली, ११-१-'४८

: ६१ :

लोकशाही कैसे काम करती है ?

एक माने हुए दोस्तने मुझे दो खत लिखे है। एकमें मुझे विना सोचे-समझे चीजोपरसे अंकुश हटानेके वुरे नतीजोंके

बारेमें मौकेकी चेतावनी दी है और दूसरेमें हिंदू-मुस्लिम-दंगोंके फूट पडनेकी संभावना बताई है। मैंने एक खतमें उनके दोनों खतोंका जवाब दिया है, जो अचानक वाद-विवादका विषय बन गया है और लोकशाहीके बारेमें मेरी राय जाहिर करता है, जो आम जनताके अहिंसक कामसे ही कायम हो सकती है। इसलिए मैं वह खत नीचे देता हूं। यहां मैं वे दो खत नहीं दे रहा हूं, जिनके जवाबमें मैंने नीचेका खत लिखा है। मेरे जवाबमें ऐसी काफी बातें हैं, जिनसे पढनेवाले उन दो खतोंका आशय जान सकेंगे। मैंने यहां जान-बूझकर खत लिखनेवाले भाईका और जगहका नाम नहीं दिया है, इसलिए नहीं कि वे खत निजी या गुप्त रखने लायक हैं, बल्कि इसलिए कि दोनोंको जाहिर करनेसे कोई लाभ नहीं होगा।

"आप अभी भी इस तरह लिखते हैं मानों आप गुलाम हों, हालांकि हमारी गुलामी अब खतम हो गई है। अगर आपके कहनेके मुताबिक अंकुश हटनेका बुरा नतीजा हुआ है तो आपको उसके खिलाफ आवाज उठानी चाहिए, चाहे ऐसा करनेवाले आप अकेले ही क्यों न हों और आपकी आवाज कमजोर ही क्यो न हो। सच पूछा जाय तो आपके बहुतसे साथी हैं और आपकी आवाज भी किसी तरह कमजोर नहीं है, बशर्ते कि सत्ताके नशेने उसे कमजोर न बना दिया हो। अंकुश हटनेसे ऊंचे चढ़नेवाले दामोंका भूत मुझे तो व्यक्तिगत रूपसे नहीं डराता। अगर हमारे बीच बहुतसे धोखेबाज लोग हैं और हम उनका मुकाबला करना नहीं जानते तो हम उनके द्वारा खा लिए जाने लायक हैं। वे हमें जरूर खा जायंगे। तब हम मुसीबतोंका बहादुरीसे सामना करना जानेंगे। सच्ची लोकशाही लोग किताबोंसे या नामसे सरकार कहे जानेवाले लेकिन असलमें अपने सच्चे सेवकोंसे नहीं सीखते। कठिन अनुभव ही लोकशाहीका सबसे अच्छा शिक्षक होता

है। मुझसे अपील करनेके दिन अब चले गए। ब्रिटिश हुकूमतके दिनोंमें हमने अहिंसाका जो जामा पहन रखा था, उसकी अब जरूरत नहीं रही। इसलिए हमें इतनी भयानक हिंसाका सामना करना पड़ रहा है। क्या आप भी उसके सामने झुक गए या आपमें भी कभी अहिंसा थी ही नहीं ? यह खत मैं इस चेतावनीके लिए नहीं लिख रहा हूं कि आप मुझे लिखकर तसवीरका अपना पहलू न बतावें; लेकिन इसका मकसद आपको यह बताना है कि मेरी अकेली आवाज सुनाई दे तो भी मैं अंकुश हटानेकी बातपर क्यों जोर देता रहूंगा।

"आपका हिंदू-मुस्लिम तंगदिलीके बारेमें लिखा खत पहले खतसे ज्यादा प्रासंगिक है। इस बारेमें भी आपको स्थितिका नरमीसे सामना करने या सस्ते आत्म-संतोषके खिलाफ खुले आम अपनी आवाज उठानी चाहिए। मैं अपना काम तो करूंगा ही, लेकिन मैं दु:खके साथ अपनी सीमाओंको मानता हूं। पहले मैं जिधर देखता था, उधर मेरा राज चलता था। आज मेरे कई साथी सत्ताधीश हो गए हैं। वह समय नहीं कि मैं अभी भी अपनेको राजा मान सकूं। अगर मैं ऐसा कर सकूं तो भी मैं उन सबसे छोटी सत्तावाला हूं। लोकशाहीके शुरुआतके दिन बेसुरे रागोंकी तरह होते हैं, जो कानोंको बुरे मालूम होते हैं और सिरदर्द पैदा करते हैं। अगर लोकशाहीको इन खा जानेवाले बेसुरे रागोंके बावजूद जिंदा रहना है तो बाहरसे बेसुरे मालूम होनेवाले कोलाहलके इस जरूरी अनुभवमेंसे सुंदर सुर और सुमेल पैदा करना ही होगा। मेरी बड़ी इच्छा है कि आप उन महान् पुरुषोंमेंसे एक हों, जो इस बेसुरे कोलाहलमेंसे सुमेलवाले सुंदर संगीतको जन्म देनेमें हाथ बंटाएंगे।

"आप यह सोचनेकी गलती नहीं करेंगे कि अपने प्रदेशकी हालतका मुझे ज्ञान कराकर आपका अपना फर्ज खतम हो जाता है।"

नई दिल्ली, ११-१-'४८

: ६२ :

स्वर्गीय तोताराम सनाढ्य

वयोवृद्ध तोतारामजी किसीकी सेवा लिए बगैर गए। वे साबरमती आश्रमके भूषण थे। वे विद्वान् नही थे, मगर ज्ञानी थे। भजनोंके भंडार होते हुए भी वे गायनाचार्य न थे। वे अपने एकतारेसे और भजनोंसे आश्रमके लोगोंको मुग्ध कर देते थे, जैसे वे थे, वैसे ही उनकी पत्नी थी। वह तो तोताराम-जीसे पहले ही चली गई।

जहां बहुतसे आदमी एक साथ रहते हों, वहा कई प्रकारके झगडे होते ही है। मुझे ऐसा एक भी प्रसग याद नही है कि जब तोतारामजी या उनकी पत्नीने उनमें भाग लिया हो, या किसी झगडेके कभी कारण बने हों। तोतारामजीको धरती प्यारी थी। खेती उनका प्राण थी। आश्रममे वर्षो पहले वे आए और उसे कभी नही छोड़ा। छोटे-बडे स्त्री-पुरुष उनकी रहनुमाईके भूखे रहते और उनके पाससे अचूक आश्वासन पाते।

वे पक्के हिंदू थे। मगर उनके मनमे हिंदू, मुसलमान और दूसरे सब धर्म बराबर थे। उनमे छुआछूतकी गध न थी। किसी किस्मका व्यसन न था।

राजनीतिमें उन्होने भाग नही लिया था, फिर भी उनका देशप्रेम इतना उज्ज्वल था कि वह किसीके भी मुकाबले खड़ा रह सकता था। त्याग उनमें स्वाभाविक था। उसे वे सुशोभित करते थे।

ये सज्जन फिजी द्वीपमें गिरमिटिए मजदूरकी तरह गए

थे और दीनबन्धु एंड्रूज उन्हे ढूंढ लाये थे। उन्हे आश्रममें लानेका यश श्री बनारसीदास चतुर्वेदीको है।

उनकी अंतिम घडीतक उनकी जो कुछ सेवा हो सकती थी, वह भाई गुलाम रसूल कुरैशीकी पत्नी और इमाम साहबकी लड़की अमीनाबहनने की थी।

'परोपकाराय सतां विभूतय.' (सज्जन पुरुष परोपकारके लिए ही जीते हैं) यह उक्ति तोतारामजीके बारेमें अक्षरश: सच थी।

नई दिल्ली, १२-१-'४८

: ६३ :

घुड़दौड़ और बाजी बदना

घुड़दौड़के मैदानपर बाजी बदनेके सिलसिलेमे मद्रासससे एक संवाददाताका दु:खद पत्र आया है। वे लिखते है कि ये दोनो काम साथ-साथ चलते है। बाजी बदनेका काम चल पड़ता है तो घुड़दौड बहुधा बंद हो जाती है। घुड़दौड़की खातिर घोड़ोंकी रखवालीके लिए यह प्रथा एकदम अनावश्यक है। वहां जानेवाले लोग मनुष्यताकी बुराइयोको पकड लेते हैं और अपना पैसा तथा बहुत-सी जमीन बरबाद करते हैं। घुडदौड़ी जुएके शौकीन अच्छे लोगोंकी बरबादी मेरी ही तरह किसने नही देखी है? यही वक्त है जब कि हम पश्चिमके दोषोसे मुक्ति पाकर वहांकी सर्वोत्तम देने अपना ले।

नई दिल्ली, १२-१-'४८

: ६४ :

गुजरातके भाई-बहनोंसे

यह खत मैं बुधवारके बड़े सवेरे बिस्तरपर पड़ा-पड़ा लिखवा रहा हूं। आज उपवासका दूसरा दिन शुरू हुआ है। फिर भी अभी उसे शुरू हुए २४ घंटे नही हुए हैं। 'हरिजन' की डाक जानेका यह आखिरी दिन है। इसलिए गुजरातियोंको दो शब्द भेजना मै ठीक समझता हूं।

इस उपवासको मै जैसा-तैसा नहीं मानता। मैंने बहुत विचारपूर्वक इसे शुरू किया है। फिर भी विचार उसका प्रेरक नही; बल्कि विचारका स्वामी राम या रहमान उसका प्रेरक है। यह उपवास किसीके सामने नही, या सबके सामने है। इसके पीछे न तो किसी तरहका गुस्सा है और न थोड़ी भी जल्दबाजी। हर बातके करनेका अवसर होता है। वह अवसर चूक जानेके बाद उसे करनेमे क्या फायदा? इसलिए अब विचारनेकी यही बात रही कि हरएक हिंदुस्तानीके लिए कुछ करना रहा या नही? हिंदुस्तानी कहनेमे गुजराती लोग शामिल है। और चूंकि यह खत गुजराती भाषामे लिखवाया जा रहा है, इसलिए यह गुजराती बोलनेवाले हर हिंदुस्तानीके लिए है।

दिल्ली हिंदुस्तानकी राजधानी है। अगर हम मनसे हिंदुस्तानके दो विभाग न माने, यानी हिंदू-मुसलमान दो न मानें, तो हिंदुस्तानका जो नकशा हम अभीतक जानते आए हैं, उस हिंदुस्तानकी राजधानी दिल्ली आज नही बनी है, हालांकि वह हमेशासे सारे हिंदुस्तानकी राजधानी रही है।

हस्तिनापुर भी वही थी और इंद्रप्रस्थ भी वही। उनके खंडहर आज भी पड़े है। यह दिल्ली तो हिंदुस्तानका हृदय है। ऐसा कहनेमे जरा भी अतिशयोक्ति नही है कि उसे सिर्फ हिंदुओ या सिक्खोंकी मानना मूर्खताकी सीमा है। यह बात भले कठोर मालूम हो, फिर भी यह शुद्ध सत्य है। इस दिल्ली-पर कन्याकुमारीसे लेकर काश्मीर तक और करांचीसे लेकर आसामके डिब्रुगढ़तक रहनेवाले और इस प्रदेशको सेवाभाव और प्रेमभावसे अपना बनानेवाले सारे हिंदू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, पारसी और यहूदियोंका हक है। इसमें बहुमत-वालोके लिए ही जगह है या अल्पमतवालोंकी अवगणना है, ऐसा कहा ही नही जा सकता। जो उसका शुद्धतम सेवक है वही बड़े-से-बड़ा हकदार है। इससे मुसलमानोंको निकाल बाहर करनेवाला शख्स इस दिल्लीका पहले नंबरका दुश्मन है और इससे वह हिंदुस्तानका दुश्मन है। इस अवसरके पास हम आ रहे हैं। हरएक हिंदुस्तानीको इस कुअवसरको टालनेमें हिस्सा लेना चाहिए। यह हिस्सा किस तरह लिया जा सकता है? अगर हम पंचायती राज चाहते है, लोकशाही तंत्र कायम करनेका इरादा रखते है, तो छोटे-से-छोटा हिंदुस्तानी बड़े-से-बड़े हिंदुस्तानीके बराबर ही हिंदुस्तानका राजा है। इसके लिए उसे शुद्ध होना चाहिए। न हो तो बनना चाहिए। वह जैसा शुद्ध हो वैसा ही समझदार हो। इससे वह जातिभेद, वर्णभेदको नही मानेगा। सबको अपने समान समझेगा। दूसरोंको अपने प्रेमपाशमे बांधेगा। उसके लिए कोई अछूत नहीं होगा। उसी तरह मजदूर और महाजन दोनों उसके

लिए बराबर होंगे। इससे वह करोड़ों मजदूरोंकी तरह पसीनेकी रोटी कमाएगा और कलम और कड़छीको एक-सा समझेगा। इस शुभ अवसरको नजदीक लानेके लिए वह खुद भंगी बन जायगा। वह समझदार होगा, इसलिए अफीम या शराबको छुएगा ही क्यों? स्वभावसे ही वह स्वदेशी-व्रत पालेगा। अपनी पत्नीको छोड़कर वह सभी स्त्रियोंको उम्रके मुताबिक मा, बहन या लड़की मानेगा। किसीपर बुरी नजर नही डालेगा। मनमें भी दूसरी भावना नहीं रखेगा। जो हक उसका है, वही अपनी स्त्रीका समझेगा। वक्त आनेपर खुद मरेगा, दूसरेको कभी नही मारेगा और बहादुर ऐसा होगा कि गुरुओंके सिक्खोंकी तरह अकेला सवालाखके सामने अड़ा रहेगा और एक कदम भी पीछे नही हटेगा। ऐसा हिंदुस्तानी यह नही पूछेगा कि इस यत्नमे मुझे कौन-सा पार्ट अदा करना है।

नई दिल्ली, १४-१-'४८

: ६५ :

क्रोध नहीं, मोह नहीं

एक भाई लिखते है—

"उर्दू 'हरिजन'के बारेमें आपका लेख देखा। यदि वह आपका लिखा न होता तो मै यही समझता कि किसीने बहुत ही क्रोधमें लिखा है। जीवणजीभाईने जो कुछ लिखा है, उससे सिर्फ यही साबित होता

है कि लोगोंको उर्दूलिपिमें 'हरिजन'की जरूरत नहीं है। पर आप उसके कारण नागरी 'हरिजनसेवक'को क्यों बंद करें? क्या आप समझते हैं कि पहले हिंदी 'नवजीवन' निकालते थे (उर्दू नहीं) तब कोई गुनाह करते थे? उसके बाद भी नागरी 'हरिजनसेवक' निकलता रहा, पर आपने उर्दू 'हरिजन' उस समय नहीं निकाला।

"अगर आपने उर्दू और नागरी 'हरिजन' केवल हिंदुस्तानीका प्रचार करनेके लिए निकाले होते तो बात ठीक थी; पर नागरी 'हरिजनसेवक' पहलेसे ही निकल रहा है। उसमें घाटा हो तो आप भले ही बंद करें। आपने जो चेतावनी नागरी 'हरिजनसेवक' बंद करनेकी दी है, उसमें मुझे एक प्रकारका बलात्कार लगता है।

"क्या अंग्रेजी 'हरिजन'से भी ज्यादा नागरी 'हरिजनसेवक'ने गुनाह किया है? सच बात तो यह है कि पहले अंग्रेजीका 'हरिजन' बंद हो जाना चाहिए। पर होता यह है कि अंग्रेजी 'हरिजन'को जितना महत्त्व मिलता है, उतना दूसरे संस्करणोंको नहीं।

"यह कितने बड़े दुःखकी बात है कि आप अपने प्रार्थना-प्रवचन हिंदुस्तानीमें देते हैं। उसका सारांश आपके दफ्तरमें अंग्रेजीमें होता रहा है और फिर उसका उल्था नागरी और उर्दू 'हरिजन'में छपता था, यह कहकर कि 'अंग्रेजीसे'। अब तो यह नहीं लिखा रहता। शायद अब सीधा हिंदुस्तानीमें ही लिखा जाता हो।

"आपने कई वर्ष पहले लिखा था कि जहांतक संभव होगा, आप केवल गुजराती या हिंदुस्तानीमें ही लिखेंगे और उसका उल्था अंग्रेजीमें आवेगा। पहले ऐसा चला भी, लेकिन बादमें यह सिलसिला शिथिल हो गया।

"मैं फिर आपसे अनुरोध करता हूं कि आप अंग्रेजी 'हरिजन' बंद कर दें और दूसरे संस्करण जारी रखें।"

जो बात वाकई सही है, वह अगर कही जाय तो उसे क्रोध मानना शब्दका सही प्रयोग नही होगा। क्रोधमें आदमी बेतुका काम कर लेता है। अगर 'उर्दू हरिजन' बंद करना पडा तो साथ-साथ नागरी भी बंद करना आवश्यक हो जाता है। आवश्यक बात करनेमें क्रोध कैसा? जिसे मैं आवश्यक समझूं, उसे दूसरे न भी समझें, जैसे कि इस पत्रके लेखक, उससे मुझे क्या? हम जिसे लाजमी माने, वही सारा जगत भी माने, ऐसा हो तो अच्छा है; लेकिन ऐसा होता नही है। हर चीजके कम-से-कम दो पहलू होते ही है।

अब यह बताना बाकी रहा कि एकको छोड़ूँ या दोनोंको। यह ठीक है कि जब मैंने नागरीमे 'नवजीवन' निकाला और 'हरिजन' निकालना शुरू किया तब दोनों लिपिकी चर्चा नही थी। अगर थी तो मुझे उसका पता नही था।

बीचमे स्व० भाई जमनालालजीकी इच्छासे हिंदुस्तानी प्रचार-सभा कायम हुई। इससे उर्दू रिसाला निकालना लाजमी हो गया। अब माना कि उर्दू रिसाला बंद हो और नागरी निकलता रहे तो यह मेरी निगाहमे बड़ा ही अनुचित होगा; क्योंकि हिंदुस्तानी प्रचार-सभाकी हिंदुस्तानीके मानी यह है कि वह जैसी नागरी लिपिमे लिखी जाती है, वैसी ही उर्दूलिपिमे भी लिखी जा सकती है।

इसलिए जो अखवार दोनों लिपिमे निकलता था, उसे ऐसे ही निकलना चाहिए, वह भी एक ऐसे मौकेपर जब कि हिंदके लोग चारों ओरसे कह रहे है कि राष्ट्रभाषा हिंदी ही है और वह नागरी लिपिमें ही लिखी जाए। यह विचार

ठीक नही है, यह बताना मेरा काम हो जाता है। यह दलील अगर ठीक है तो मेरा कर्त्तव्य हो जाता है कि मैं नागरी लिपिके साथ उर्दूलिपिको भी रखूं और न रख सकूं तो मुझे उर्दू 'हरिजनसेवक' के साथ नागरी 'हरिजनसेवक' का भी त्याग करना चाहिए।

लिपियोंमें मैं सबसे आला दर्जेकी लिपि नागरीको ही मानता हूं। यह कोई छिपी बात नही है, यहांतक कि मैंने दक्षिण अफ्रीकासे गुजराती लिपिके बदलेमे नागरी लिपिमे गुजराती खत लिखना शुरू किया था। इसे मैं समय न मिलनेके कारण आजतक पूरा न कर सका। नागरी लिपिमे भी सुधारके लिए गुंजाइश है, जैसे कि करीब-करीब सब लिपियोमे है। लेकिन यह दूसरा विषय हो जाता है। यह इशारा जो मैंने किया है सो यह बतानेके लिए कि नागरी लिपिका विरोध मेरे मनमे जरा भी नही है। लेकिन जब नागरीके पक्षपाती उर्दूलिपिका विरोध करते है तब उसमे मुझे द्वेषकी और असहिष्णुताकी बू आती है। विरोधियोंमे इतना भी आत्मविश्वास नही है कि नागरी लिपि यदि संपूर्ण है—दूसरी लिपियोंके मुकाबलेमे पूर्ण है—तो उसीका साम्राज्य अंतमे होगा। इस निगाहसे देखा जाय तो मेरा फैसला निर्दोष लगना चाहिए और जरूरी भी।

हिंदुस्तानीके बारेमे मेरा पक्षपात है जरूर। मैं मानता हूं कि नागरी और उर्दूलिपिके बीच अंतमे जीत नागरी लिपिकी ही होगी। इसी तरह लिपिका ख्याल छोड़कर भाषाका ही ख्याल करे तो जीत हिंदुस्तानीकी ही होगी;

क्योकि संस्कृतमयी हिंदी बिलकुल बनावटी है और हिंदुस्तानी बिलकुल स्वाभाविक। उसी तरह फारसीमयी उर्दू अस्वाभाविक और बनावटी है। मेरी हिंदुस्तानीमे फारसी शब्द बहुत कम आते है तो भी मेरे मुसलमान दोस्तो और पंजाबी और उत्तरके हिंदुओंने मुझे सुनाया है कि मेरी हिंदुस्तानी समझनेमे उनको दिक्कत नही होती। हिंदीके पक्षमें मै तो बहुत कम दलील पाता हूं। खूबी यह है कि पहलेपहल जब हिंदी-साहित्य-सम्मेलनमे मैने हिंदीकी व्याख्या दी तब उसका विरोध नहीके बराबर था। विरोध कैसे शुरू हुआ इसका इतिहास बड़ा करुणाजनक है। मै उसे याद भी नहीं रखना चाहता। मैने यहांतक बताया था कि 'हिंदी-साहित्य-सम्मेलन' नाम ही राष्ट्रभाषाके प्रचारके लिए सूचक नही था, न आज भी है।

लेकिन मै साहित्यके प्रचारकी दृष्टिसे सदर नही बना था। स्व० भाई जमनालालजी और दूसरे अनेक मित्रोने मुझे बताया था कि नाम चाहे कुछ भी हो, उन लोगोंका मन साहित्यमे नही था, उनका दिल राष्ट्रभाषामें ही था और इसलिए मैने दक्षिणमे राष्ट्रभाषाका प्रचार बड़े जोरोंसे किया।

प्रातःकालमें उपवासके छठे दिन प्रार्थनाके बाद लेटे-लेटे मै यह लिखा रहा हूं। कितने ही दुःखदायी स्मरण ताजा होते है, पर उन्हें और बढ़ाना मुझे अच्छा नही लगता है।

नामका झगड़ा मुझे बिलकुल पसंद नही है। नाम कुछ भी हो; लेकिन काम ऐसा हो कि जिससे सारे राष्ट्रका कल्याण हो। उसमे किसी भी नामका द्वेष होना ही नही चाहिए।

"सारे जहांसे अच्छा हिंदोस्तां हमारा,"—इकबालके इस वचनको सुनकर किस हिंदुस्तानीका दिल नही उछलेगा ? अगर न उछले तो मै उसे कमनसीब समझूंगा। इकबालके इस वचनको मैं हिंदी कहूं, हिंदुस्तानी कहू, या उर्दू ? कौन कह सकता है कि इसमे राष्ट्रभाषा नहीं भरी है, इसमें मिठास नही है, विचारकी बुजुर्गी नही है ? भले ही इस विचारके साथ आज मै अकेला होऊं, यह साफ है कि जीत कभी संस्कृतमयी हिंदीकी होनेवाली नही है, न फारसीमयी उर्दूकी। जीत तो हिदुस्तानीकी ही हो सकती है। जब हम अंदरूनी द्वेषभावको भूलेंगे तब हम इस बनावटी झगड़ेको भूल जायंगे, उससे शरमिंदा होंगे।

अब रही अंग्रेजी 'हरिजन'की बात। इसे मैं छोटी बात मानता हूं। अंग्रेजी 'हरिजन'को मैं छोड़ नही सकता; क्योकि अंग्रेज लोग और अंग्रेजीके विद्वान हिंदुस्तानी लोग मानते हैं कि मेरी अंग्रेजीमे कुछ खूबी है। पश्चिमके साथ मेरा संबंध भी बढ़ रहा है। मुझमें अंग्रेजोंका या दूसरे पश्चिमी लोगोंका द्वेष न कभी था, न आज है। उनका कल्याण मुझे उतना ही प्रिय है जितना कि हमारे देशका। इसलिए मेरे छोटेसे ज्ञान-भंडारमेसे अंग्रेजी भाषाका बहिष्कार कभी नहीं होगा। मै उस भाषाको भूलना नहीं चाहता, न चाहता हूं कि सारे हिंदुस्तानी अंग्रेजी भाषाको छोड़ें या भूले। मेरा आग्रह हमेशा अंग्रेजीको उसकी योग्य जगहसे बाहर न ले जानेका रहा है। वह कभी राष्ट्रभाषा नही बन सकती और न हमारी तालीमका जरिया। ऐसा करके हमने

अपनी भाषाओंको कंगाल बना रखा है। विद्यार्थियोंपर हमने बड़ा बोझ डाला है। यह करुण दृश्य, जहांतक मुझे इल्म है, सिर्फ हिंदुस्तानमे ही देखा जाता है। इस भाषाकी गुलामीने हमारे करोड़ों लोगोंको बहुतेरे ज्ञानसे बरसोंतक वंचित रखा है। इसकी हमें न समझ है, न शरम, न पछतावा! यह कैसी बात? यह सब साफ-साफ जानते हुए भी मैं अंग्रेजी भाषाका बहिष्कार नही सह सकता। जैसे तामिल आदि सूबाई भाषाएं हैं और हिंदुस्तानी राष्ट्रभाषा, ठीक इसी तरह अंग्रेजी विश्वभाषा है—जगतकी भाषा है, इससे कौन इन्कार कर सकता है? अंग्रेजोंका साम्राज्य जायगा, क्योंकि वह दूषित था और है; लेकिन अंग्रेजी भाषाका साम्राज्य कभी नहीं जा सकता।

मुझे ऐसा लगता है कि गुजराती भाषामें या अंग्रेजी भाषामे मैं कुछ भी लिखू तो भी अंग्रेजी 'हरिजन' और गुजराती 'हरिजन-बंधु' अपने पैरोंपर खड़े रहेंगे।

नई दिल्ली, १८-१-'४८
सुबह ५ बजकर ४५ मिनिट

: ९६ :

विचारने लायक

एक नौजवान भाई लिखते हैं:

"आज दोपहरको मुझे मालूम हुआ कि आपने उपवास शुरू किया

है। उपवासके बीच आपको तकलीफ देनेकी इच्छा नहीं हो सकती, लेकिन आज तो लिखे बिना रहा नहीं जाता।

"१. आपके उपवासके पांच-सात दिनमें हिंदू-मुसलमानोके बीच दिली एकता कायम होना संभव नहीं है। हां, ऐसी एकता पैदा हुई है, यह बतानेवाले जुलूसों और सभाओंका प्रदर्शन खूब होगा। ऐसा होना ठीक भी है; लेकिन यह सब दिली एकताका सबूत नहीं होगा। इसलिए अगर आपका उपवास छूटे तो आप इस भुलावेमें न रहें कि हिंदू-मुसलमानोके बीच दिली एकता पैदा हो गई है। कलकत्तेकी शांतिको मैं दिली एकता नहीं मानता; लेकिन आपके उपवाससे यह हो सकता है कि हिंदू अपने गुस्सेको जरा काबूमें रखकर निर्दोष मुसलमानोको कतल न करें। मैं मानता हूं कि आपका उपवास छूटनेके लिए इतना काफी होगा।

"२. आपने अपनी तपस्यासे लोगोके दिलोमें अनोखा स्थान पा लिया है; लेकिन दूसरी तरफ लोगोमें यह ज्ञान प्रकट नहीं हुआ है कि शरीर मरे तो कोई चिंता नहीं, आत्मा तो अमर है। इस कारणसे लोग आपके शरीरको कमजोर और क्षीण होते देखनेके लिए तैयार नहीं हैं। इसलिए आपके शरीरको बचानेके लिए लोग अपना गुस्सा और नफरत दबा देंगे। लेकिन दबा हुआ गुस्सा मौका मिलते ही फूट पड़नेवाला है। मुझे लगता है कि इसी विचारके बाद आपने देशके सामने हिंदके टुकड़े करनेके बजाय घरेलू लड़ाई पसंद करनेकी सूचना रखी होगी।

"३. अगर लोगोके दिलोमेंसे वैर और गुस्सा निकालना हो तो सरकारको चाहिए कि वह लोगोंको अपना जीवन रचनात्मक कार्यक्रमके ऊपर ही रचना सिखावे; लेकिन आज तो मैं अखबारोमें देखता हूं कि थोड़े ही समयमें ६०० विदेशी ट्रैक्टर और ६००० टन या इससे ज्यादा एमो- नियम सल्फेटकी खाद देशमें आनेवाली है। देशकी रक्षाके लिए देशमें उद्योग-धंधे और कारखाने खोलनेकी बातें भले हों; लेकिन जीवनकी

दो खास जरूरतों—खुराक और कपड़े—पर केंद्रीय उत्पादनका उसूल किसलिए लागू किया जाता है ? यह समझमें नहीं आता। जब अमेरिकाके लोग कुदरती खादकी तरफ जा रहे हैं तब हम रासायनिक खादकी शुरुआत कर रहे हैं।

"४. मैं यह अपने अनुभवसे कहता हूं कि हिंदके मुसलमान आपको जितने निर्दोष दीखते हैं, उतने वे सचमुच हैं नहीं। और दिल्लीके मुसलमान आपको अपनी करुणाजनक हालत बतावें तो उससे आप यह न समझें कि हिंदके सारे मुसलमान या उनका बड़ा हिस्सा भी निर्दोष हैं और करुणाजनक हालतमें जीता है। इससे उलटे, मुसलमानोंका बहुत बड़ा हिस्सा यह आशा करके बैठा है कि कब पाकिस्तान हिंदपर चढ़ाई करे और हम उसमें हिस्सा लें। ऐसे आदमियोंमें मैं गांवोंके अज्ञान आदमियोंकी कल्पना नहीं करता। फिर भी ये लोग आगमें सूखी लकड़ीका काम जरूर करेंगे। इसलिए मैं तो यह मानता हूं कि पाकिस्तान आज जो अपनी मर्यादा नहीं समझता, इसका कारण यह है कि उसे पूरा विश्वास है कि हिंदके मुसलमान उसीके हैं और वे आपकी हस्तीका पूरा लाभ उठाएंगे। और इसके पीछे भी स्वार्थी राष्ट्रोंकी मदद है, यह तो मैं मानता ही हूं।

"५. इन सब विचारोंको देखते हुए मैं यह मानता हूं कि आपका उपवास हिंदुओंसे थोड़ा संयम रखनेकी ही अपेक्षा रखता है।

"६. मैं मानता हूं कि हिंदू-मुसलमानोंका झगड़ा दो तरहसे ही शांत हो सकता है। एक तो हिंदू अगर शुद्ध हृदयके बन जायं तो—इस आशाको तो कबसे ही निष्फल हुई समझना चाहिए। आपने ही कहा है कि आजतककी कांग्रेसकी लड़ाई कमजोरोंकी अहिंसा थी, यानी जब सत्ता हाथमें आ गई है तब यह संस्था दूने जोरसे हिंसाके रास्ते ही जायगी। मौजूदा कांग्रेसी सरकारोंके लक्षण देखते हुए यह बात साबित हो सकती है। दूसरा रास्ता यही है कि हिंद-सरकार दृढ़तासे काम ले। मुझे लगता

है कि अभी वह ऐसा नहीं करती। और जिस हदतक आपके असरके परिणाम-स्वरूप इसमें ढिलाई है, उस हदतक देशका नुकसान है।"

ऊपरका खत विचारने लायक होनेके कारण यहां दिया गया है। क्षणभरमे हृदय-परिवर्त्तन होनेके उदाहरण मिल सकते है। यह कहना ज्यादा मौजू है कि ऐसे परिवर्त्तन टिक नही सकते। उपवास छुट गया, अब यह देखना वाकी है कि इसका टिकाऊ परिणाम क्या आता है। इतना कहकर मैं ऊपरके खतमें लिखी बातोंकी कीमत कम करना नही चाहता। हिंदू, सिक्ख, मुसलमान सब उसमेसे सबक ले सकते है। साप्रदायिक मेल-जोल कोई नई बात नही है। इसकी कोशिश हमेशा चलती रही है। हिंदुस्तानकी आजादीका यह एक स्तभ है। यह न हो तो आजादी टिक नही सकती। इसे स्वय-सिद्ध बात मानना चाहिए। बीचका जो समय बीता (अगर बीत गया हो तो) वह हमारी बेहोशीका समय माना जा सकता है। इसलिए यह आशा रखी जा सकती है कि दिल्लीमें हुई एकता टिकेगी और पक्की साबित होगी।

यह बात याद रखने लायक है कि एकता टिकनेका आधार रचनात्मक कामके ऊपर रहता है। यह किस तरह हो सकता है, इसकी खोज करनी है। इस बातको माननेवाले हरएक सेवकको इसे अपने जीवनमे उतारना चाहिए और अपने पड़ोसियोको समझाना चाहिए। रचनात्मक कामका शास्त्र समझनेसे उसे रुचिकर बनाया जा सकता है। हम रोजाना यह अनुभव करते है कि मशीनकी तरह बिना समझे-बूझे नकल करनेसे यह काम आगे नही बढ़ाया जा सकता।

इस विषयमे मुझे कोई शक नही है कि ट्रैक्टर और रासायनिक खाद नुकसानदेह है।

मै यह नही मानता कि हिंदुस्तानके सारे मुसलमान निर्दोष है। मै तो यह मानता हू कि पाकिस्तान बन जानेसे वे यहा ऐसी मुश्किल स्थितिमे पड़ गए हैं, जिसकी कल्पना भी नही थी। बहुसख्यकोंको उनके प्रति शुद्ध इन्साफ करना चाहिए। अगर बहुसख्यक जाति अपनी सत्ताके नशेमे यह माने कि अल्पसख्यकोको कुचला जा सकता है और वह केवल हिंदू-राज कायम करनेकी बात सोचे तो इसमे मै बहुसख्यकोंका और हिंदू-धर्मका नाश देखता हू। यह वक्त ऐसा है कि जब शुभ और लगातार कोशिश करनेसे दोनोके दिलमेसे मैल और अज्ञान दूर हो सकते है।

पाचवे पैरेकी गुजराती अगर बराबर (?) पढनेमे आई हो तो वह कुछ अस्पष्ट मालूम होता है। चाहे जो हो, मेरा उपवास सबकी शुद्धिके लिए था। वह हिंदू, सिक्ख, मुसलमान और दूसरे सब लोगोसे शुद्धिकी अपेक्षा रखता था और रखता है।

छठे पैरेमे सिर्फ बुद्धिवाद है। उसमे हृदयको जगह नही दी गई। जो बात आजादीकी लडाईके दरमियान नही हुई, वह अब हो ही नही सकती, ऐसा कोई निश्चयपूर्वक नही कह सकता। अहिसाका साम्राज्य बतानेका आज सच्चा मौका है। यह सच है कि लोग आम जनताको हथियारबद करनेके भवरमे फॅस गए है। इस भंवरमेसे थोड़े भी वच जाय तो माना जायगा कि वे बहादुरकी अहिसाके जोरसे बचे है और वे हिंदके सबसे श्रेष्ठ सेवक माने जायगे। यह बात

बुद्धिसे साबित करके नही बताई जा सकती। इसलिए जब-तक अनुभव न हो तबतक श्रद्धाका ही आसरा लेना होगा। श्रद्धा न हो तो अनुभव कहांसे आवे?

स्वराजकी सरकारके लिए दृढतासे और हिम्मतसे काम लेनेके सिवा दूसरा कोई रास्ता नही है। जो सरकार कमजोर है या किसीसे भी प्रेरित होकर बिना समझे काम करती है, वह सरकार हुकूमत करनेके काबिल नही है। उसे हटकर दूसरोके लिए जगह खाली करनी चाहिए। मेरे असरके कारण पंडित नेहरू या सरदारमे ढिलाई आती है, ऐसा कहनेमें और माननेमे, उनके बारेमे अज्ञान दिखाई पडता है। मेरे स्पर्शका अगर यह असर हो तो यह मेरे लिए शर्मकी बात है और देशके लिए यह नुकसानदेह है।

नई दिल्ली, २३-१-'४८

: ९७ :

हरिजन और मंदिर-प्रवेश

एक भाई वढवाणसे लिखते है

"हरिजन भाइयोके मंदिर-प्रवेशके बारेमें आपको समाचार मिलते ही होंगे। आजकल हरिजन भाइयोको ट्रस्टियोकी मरजीसे या मरजीके खिलाफ मंदिरोमें प्रवेश कराया जाता है। मामूली तौरपर अमुक सम्प्रदाय-के मंदिरोमें—जैसे राम-मंदिरो और विष्णु सम्प्रदायकी हवेलियोमें—प्रवेश करनेका आग्रह रखा जाय तो यह समझमें आने लायक बात है।

लेकिन ऐसे बहुतसे संप्रदाय हैं--जैसे स्वामीनारायण संप्रदाय, जैन संप्रदाय और दूसरे--जिनके धर्मोको हरिजन भाई नहीं मानते। मंदिरोंमें प्रवेशके बाद वे उन धर्मोको एकदम मानने लग जायंगे, यह मान लेना बहुत ज्यादा होगा। ऐसे मंदिरोंमें हरिजन भाइयोंको जबरन प्रवेश करानेसे क्या फायदा होगा, यह समझमें नहीं आता ?"

दूसरा पत्र अहमदाबादसे आया है। उसमे दस्तखत नही है। आखिरमे लिखा है--"आपके पीडित"। अक्षर बहुत अच्छे हैं। मै जिन हरिजनोको पहचानता हू, उनकी न तो यह भाषा है और न ये अक्षर। उस पत्रका खास हिस्सा जैसा है वैसा नीचे देता हू :

"मकरसंक्रांति १४ जनवरीको थी। उस दिन हरिजनोंने मंदिरमें प्रवेश करनेकी कोशिश की।... सबेरे आठ बजे भजन-मडलियोके साथ जब स्वामीनारायणके मंदिरमें पहुंचे तो वहां खंभाती ताले लगाए हुए थे।... आज भी वे वहांसे हटे नहीं है।... वे भजन गाया करते है और रात-दिन मंदिरके दरवाजेपर सत्याग्रह करके बैठे रहते हैं।.. कामसे कहीं जाते नहीं.. शहर-समिति हरिजनोके इस कदमको निंदा करती है।.. यह कैसी विचित्र बात है ! आजादीके आनेपर भी हरिजनोंको उनके हक न मिलें तो फिर कब मिलेंगे ? शहरके कांग्रेसी लोग आकर ५-१० मिनिट खड़े रहते है और चले जाते है, वे किसी तरहकी कोशिश नहीं करते।... मदद भी नही करते। और बेचारे हरिजन सर्दीमें मंदिरके दरवाजेपर बैठकर भजन किया करते है।... इसका फैसला आखिर कौन करेगा ? यहांके कांग्रेसियोमें कोई चरित्रवाला आदमी नहीं है।.. डाकोरमें तो पूज्य रविशंकर महाराजने अपनी कोशिशसे हरिजनोको दर्शन कराए। . यहा ऐसा कुछ नहीं है तो यह हक हरिजनोको कब मिलेगा ? आप बीचमें पड़ें तो कुछ असर

होगा।.. .आज ३ दिन हुए। बेचारे हरिजन सर्दी और धूपमें बैठे रहते हैं।.. .और हजारोंकी संख्यामें मंदिरके दरवाजेपर सत्याग्रह कर रहे हैं।...उन्हें कायदेकी शरण नहीं लेनी है और नामधारी सवर्णोंका हृदय कभी पलटनेवाला नहीं।.. .तो आखिर क्या फैसला किया जाय, इस बारेमें आप कुछ रहनुमाई करेंगे ?"

पहले पत्रमे लिखनेवाले भाईने मदिरोंके जो अलग-अलग भाग किए है, उसमे मुझे कोई सचाई नही मालूम होती। स्वामी नारायणके मंदिर, जैन मदिर वगैरहमे हरएक हिंदू जा सकता है और जाता है। उनमें हरिजनोको भी जाना चाहिए। यह बात सिद्ध करनेवाली हलचल बरसोंसे चलती आई है कि हरिजनों और ब्राह्मणोंके एक-से हक है। उसमे बहुत हद-तक सफलता मिली है। अब तो बंबई सूबेमे एक कानून बन गया है। इसलिए अब सत्याग्रहका कोई स्थान है, ऐसा मुझे नही लगता। जो कायदा लोकमतके अनुसार होगा, उसे स्वभावसे जनताका आदर मिलेगा। अगर कायदा लोकमतके खिलाफ होगा तो उसका अमल धीरे-धीरे होगा। लोकशाहीमें कायदेका अमल जबरन नही हो सकता। उसमे विवेककी जरूरत हमेशा रहती है। सुधारक समझपूर्वक कायदेकी मदद ले तो वह सफल होता है। अगर वह जल्दबाजी करता है तो कायदा बेकार सावित होता है।

ट्रस्टी मदिरोके मालिक नही होते। मदिरका बनानेवाला भी, जब वह आम जनताके लिए उसे बनाता है, मालिक नही रह जाता। मदिरोके मालिक उसके पुजारी है। पुजारी वह है, जो उसमे पूजा करने या पूजाका दिखावा करने जाता है।

इस दृष्टिसे जैन-मंदिर, स्वामी नारायण-मंदिर वगैरा हिंदुओंके माने जाते है। इन मंदिरोंमें मैं खुद गया हूं। मुझे या मुझ-जैसे सैकड़ों आदमियोको कोई पूछता नही कि तुम किस जातिके हो। हिंदू-जैसा लगूं, इतना बस है। इसलिए जहां हिंदू जायं, वहां हरिजन भी जायं। हरिजन नामकी कोई अलग जाति आज नही है। वह चार या अठारह वर्णोमे शामिल है। जाग्रत लोकमत ऐसा कहता है, उसे आदर देनेवाला कानून ऐसा कहता है। उसके खिलाफ जानेवालेका मत आज नही चल सकता। देवमे प्राण डालनेवाले पुजारी होते हैं। वे अच्छे तो देव अच्छे।

अब दूसरे पत्रको लेता हूं। ऊपर कहे मुताबिक मेरा दृढ़ मत होते हुए भी हरिजनोंका आग्रह मेरी समझमे नही आता। जो हठ पकड़कर बैठे है, वे सच्चे भक्त नही हैं। उन्हे देव-दर्शनकी नही पड़ी है। वे हकके पीछे दौड़ते हैं और इसलिए धर्मसे दूर जाते है। वे लिखे, उसपर सही न करें और अपनी तरफसे दूसरेको लिखने दें। सच्चा पुजारी तो भक्त नंदनारका अनुसरण करता है। नंदनारकी पीठपर ईश्वरके सिवा दूसरा कोई नही था। उस नदनारको आज अपनेको ऊंचा माननेवाले ब्राह्मण भी उत्साहसे पूजते है। अपनी इच्छासे हरिजन बना हुआ मैं हरिजनोमे नदनारको देखनेकी इच्छा रखता हूं। और उसी तरह जन्मसे माने जाने-वाले हरिजन भी इच्छा रखे। अगर गैर-हरिजन हिंदूसमाजको गरज हो तो वह हरिजन-हिंदूको इज्जतके साथ मंदिरमें ले जाय। ऐसा न हो तबतक हरिजन घर बैठे गंगा लावें

और उसमे स्नान करे। उन्हे किसी मदिरके सामने जाकर फाका करनेकी जरूरत नही। इसे मैं अधर्म मानता हूं। जैसे फाकेको हिंदीमे 'धरना देना' कहते है, गुजरातीमें इसे लंघन करना या 'त्रागा'[1] कहते है। उसमे पुण्य तो नही, पाप ही है। ऐसे पापसे सब सौ कोस दूर रहे।

नई दिल्ली, २७-१-'४८

: ६८ :

कांग्रेसका स्थान और काम

कांग्रेस देशकी सबसे पुरानी राष्ट्रीय राजनैतिक सस्था है। उसने कई अहिंसक लडाइयोके वाद आजादी हासिल की है। उसे मरने नही दिया जा सकता। उसका खात्मा सिर्फ तभी हो सकता है, जब राष्ट्रका खात्मा हो। एक जीवित संस्था या तो जीवंत प्राणीकी तरह लगातार वढती रहती है, या मर जाती है। कांग्रेसने सियासी आजादी तो हासिल कर ली है, मगर उसे अभी माली आजादी, सामाजिक आजादी और नैतिक आजादी हासिल करनी है। ये आजादियां चूंकि रचनात्मक है, कम उत्तेजक है और भड़कीली नही है, इसलिए उन्हे हासिल करना राजनैतिक आजादीसे ज्यादा मुश्किल

---

[1] दूसरेको रास्तेपर लानेके लिए अपने ऊपर की जानेवाली जबरदस्ती।

है । जीवनके सारे पहलुओंको अपनेमें समा लेनेवाला रचनात्मक कार्य करोड़ों जनताके सारे अगोंकी शक्तिको जगाता है ।

कांग्रेसको उसकी आजादीका प्रारभिक और जरूरी हिस्सा मिल गया है; लेकिन उसकी सबसे कठिन मंजिल आना अभो बाकी है । जनतन्त्रात्मक व्यवस्था कायम करनेके अपने मुश्किल मकसदतक पहुचनेमें उसने अनिवार्य रूपसे दलबंदी करनेवाले गदे पानीके गड़्हों-जैसे मंडल खडे किए है, जिनसे घूसखोरी और बेईमानी फैली है और ऐसी सस्थाएं पैदा हुई है, जो नामकी ही लोकप्रिय और प्रजातंत्री है । इन सब बुराइयोंके जंगलसे बाहर कैसे निकला जाए ?

कांग्रेसको सबसे पहले अपने सदस्योके उस विशेष रजिस्टरको अलग हटा देना चाहिए, जिसमे सदस्योंकी तादाद कभी भी एक करोडसे आगे नही बढ़ी और तब भी जिन्हें आसानीसे शनाख्त नही किया जा सकता था । उसके पास ऐसे करोड़ोका एक अज्ञात रजिस्टर था, जो कभी उसके काममें नही आए । अब कांग्रेसका रजिस्टर इतना बडा होना चाहिए कि देशके मतदाताओकी सूचीमें जितने मर्द और औरतोंके नाम है, वे सब उसमे आ जाय । कांग्रेसका काम यह देखना होना चाहिए कि कोई बनावटी नाम उसमे शामिल न हो जाय और कोई जायज नाम छूट न जाय । उसके अपने रजिस्टरमे उन देश-सेवकोंके नाम रहेंगे जो समय-समयपर उनको दिया हुआ काम करते रहेंगे ।

देशके दुर्भाग्यसे ऐसे कार्यकर्त्ता फिलहाल खास तौरपर शहरवालोंमेसे ही लिए जायगे, जिनमेंसे ज्यादातरको देहातोंके

लिए और देहातोमे काम करनेकी जरूरत होगी। मगर इस श्रेणीमे ज्यादा-से-ज्यादा तादादमे देहाती लोग ही भर्ती किए जाने चाहिए।

इन सेवकोसे यह अपेक्षा रखी जायगी कि वे अपने-अपने हलकोंमे कानूनके मुताबिक रजिस्टरमें दर्ज किये गए मतदाता-ओंके बीच काम करके उनपर अपना प्रभाव डालेगे और उनकी सेवा करेगे। कई व्यक्ति और पार्टियां इन मतदाताओंको अपने पक्षमे करना चाहेगी। जो सबसे अच्छे होगे उन्हीकी जीत होगी। इसके सिवा और कोई दूसरा रास्ता नही है, जिससे कांग्रेस देशमें, तेजीसे गिरती हुई अपनी अनुपम स्थितिको फिरसे हासिल कर सके। अभी कलतक कांग्रेस बेजाने देशकी सेविका थी। वह खुदाई खिदमतगार थी, भगवानकी सेविका थी। अब वह अपने आपसे और दुनियासे कहे कि वह सिर्फ भगवानकी सेविका है, न इससे ज्यादा, न कम। अगर वह सत्ता हड़पनेके व्यर्थके झगडोमें पड़ती है तो एक दिन वह देखेगी कि वह कही नही है। भगवानको धन्यवाद है कि अब वह जन-सेवाके क्षेत्रकी एकमात्र स्वामिनी नही रही!

मैने सिर्फ दूरका दृश्य आपके सामने रखा है। अगर मुझे वक्त मिला और स्वास्थ्य ठीक रहा तो मै इन कालमोमे यह चर्चा करनेकी उम्मीद करता हूं कि अपने मालिकोकी, सारे बालिग मर्द और औरतोकी, नजरोंमे अपनेको ऊचा उठानेके लिए देशसेवक क्या कर सकते है।

नई दिल्ली, २७-१-'४८

: ६६ :

आखिरी वसीयतनामा

देशका बटवारा होते हुए भी, हिंदकी राष्ट्रीय कांग्रेस-द्वारा तैयार किए गए साधनोंके जरिए हिंदुस्तानको आजादी मिलनेके कारण मौजूदा स्वरूपवाली कांग्रेसका काम अब खत्म हुआ—यानी प्रचारके वाहन और धारासभाकी प्रवृत्ति चलानेवाले तत्रके नाते उसकी उपयोगिता अब समाप्त हो गई है। शहरों और कसबोंसे भिन्न उसके सात लाख गावोंकी दृष्टिसे हिंदुस्तानकी सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी हासिल करना अभी बाकी है। लोकशाहीके ध्येयकी तरफ हिंदुस्तानकी प्रगतिके दरमियान फौजी सत्तापर मुल्ककी सत्ताको प्रधानता देनेकी लडाई अनिवार्य है। कांग्रेसको हमे राजनैतिक पार्टियो और साप्रदायिक सस्थाओंके साथकी गंदी होड़से बचाना चाहिए। इन और ऐसे ही दूसरे कारणोसे अखिल भारत कांग्रेस कमेटी नीचे दिए हुए नियमोके मुताबिक अपनी मौजूदा सस्थाको तोडने और 'लोक-सेवक-सघ'के रूपमे प्रकट होनेका निश्चय करे। जरूरतके मुताबिक इन नियमोमे फेरफार करनेका इस सघको अधिकार रहेगा।

गांववाले या गाववालो-जैसी मनोवृत्तिवाले पाच बालिग मर्दो या औरतोकी बनी हुई हरएक पंचायत एक इकाई बनेगी।

पास-पासकी ऐसी हर दो पचायतोकी, उन्हीमेसे चुने हुए एक नेताकी रहनुमाईमे, एक काम करनेवाली पार्टी बनेगी।

जब ऐसी १०० पचायते बन जाय तब पहले दरजेके पचास

नेता अपनेमेसे दूसरे दरजेका एक नेता चुने और इस तरह पहले दरजेके नेता दूसरे दरजेके नेताके मातहत काम करे। दो सौ पंचायतोके ऐसे जोड़ कायम करना तबतक जारी रखा जाय, जबतक कि वे पूरे हिंदुस्तानको न ढंक ले। और बादमें कायम की गई पचायतोका हरएक समूह पहलेकी तरह दूसरे दरजेका नेता चुनता जाय। दूसरे दरजेके नेता सारे हिंदुस्तानके लिए सम्मिलित रीतिसे काम करे और अपने-अपने प्रदेशोमे अलग-अलग काम करे। जब जरूरत महसूस हो तब दूसरे दरजेके नेता अपनेमेसे एक मुखिया चुने, जो चुननेवाले चाहे तबतक, सब समूहोको व्यवस्थित करके उनकी रहनुमाई करे।

(प्रांतों या जिलोंकी अतिम रचना अभी तय न होनेसे सेवकोके इस समूहको प्रातीय या जिला समितियोमे वांटनेकी कोशिश नही की गई। और किसी भी वक्त बनाए हुए समूह या समूहोको सारे हिंदुस्तानमे काम करनेका अधिकार रहेगा। सेवकोके इस समुदायको अधिकार या सत्ता अपने उन स्वामियो-से यानी सारे हिंदुस्तानकी प्रजासे मिलती है, जिसकी उन्होने अपनी इच्छासे और होशियारीसे सेवा की है।)

(१) हरएक सेवक अपने हाथों कते हुए सूतकी या चरखा-सघद्वारा प्रमाणित खादी हमेशा पहननेवाला और नशीली चीजोसे दूर रहनेवाला होना चाहिए। अगर वह हिंदू है तो उसे अपनेमेसे और अपने परिवारमेसे हर किस्मकी छुआछूत दूर करनी चाहिए और जातियोके बीच एकताके, सब धर्मोके प्रति समभावके और जाति, धर्म या स्त्री-पुरुषके,

किसी भेदभावके बिना सबके लिए समान अवसर और दरजेके आदर्शमें विश्वास रखनेवाला होना चाहिए।

(२) अपने कर्मक्षेत्रमे उसे हरएक गाववालेके निजी संसर्गमे रहना चाहिए।

(३) गांववालोमेंसे वह कार्यकर्त्ता चुनेगा और उन्हे तालीम देगा। इन सबका वह रजिस्टर रखेगा।

(४) वह अपने रोजानाके कामका रेकार्ड रखेगा।

(५) वह गांवोंको इस तरह संगठित करेगा कि वे अपनी खेती और गृह-उद्योगोंद्वारा स्वयंपूर्ण और स्वावलबी बने।

(६) गांववालोंको वह सफाई और तंदुरुस्तीकी तालीम देगा और उनकी बीमारी व रोगोंको रोकनेके लिए सारे उपाय काममे लाएगा।

(७) हिंदुस्तानी तालीमी सघकी नीतिके मुताबिक नई तालीमके आधारपर वह गांववालोंकी पैदा होनेसे मरने तक सारी शिक्षाका प्रबध करेगा।

(८) जिनके नाम मतदाताओंकी सरकारी सूचीमे न आ पाए हों, उनके नाम वह उसमे दर्ज कराएगा।

(९) जिन्होंने मत देनेके अधिकारके लिए जरूरी योग्यता अभी हासिल न की हो, उन्हे उसे हासिल करनेके लिए वह प्रोत्साहन देगा।

(१०) ऊपर बताए हुए और समय-समयपर बढ़ाए हुए मकसद पूरे करनेके लिए, योग्य फर्ज अदा करनेकी दृष्टिसे संघके द्वारा तैयार किये गए नियमोंके मुताबिक वह खुद तालीम लेगा और योग्य बनेगा।

संघ नीचेकी स्वाधीन संस्थाओंको मान्यता देगा :

(१) अखिल भारत चर्खा-संघ

(२) अखिल भारत ग्रामोद्योग-संघ

(३) हिंदुस्तानी तालीमी-संघ

(४) हरिजन-सेवक-संघ

(५) गोसेवा-संघ

संघ अपना मकसद पूरा करनेके लिए गांववालोंसे और दूसरोंसे चंदा लेगा। गरीब लोगोंका पैसा इकट्ठा करनेपर खास जोर दिया जायगा।

नई दिल्ली, २९-१-'४८

: १०० :

हे राम !

नई दिल्ली, ३०-१-'४८